वेदव्यासप्रणीतम्

आद्युपपुराणम्

(हिन्दीभाषानुवादसंवलितम्)

सम्पादकोऽनुवादकश्च
डॉ. बृजेशकुमारशुक्लः

उपाचार्यः
संस्कृतप्राकृतभाषाविभागे
लखनऊ विश्वविद्यालये
लखनऊ

नाग पब्लिशर्स
११- ए (यू.ए.) जवाहर नगर,
दिल्ली - ११०००७
(भारत)

विषयानुक्रमणी

इति विषयानुक्रमणिका

चौखम्बा संस्कृत सीरीज
१२३
—*—

पण्डितश्रीसरयूप्रसादद्विवेदविरचितम्

आगमरहस्यम्

(शैवागमान्तर्गतम्)

'सुधा' हिन्दीव्याख्योपेतम्

(पूर्वार्द्धम्)

सम्पादकः व्याख्याकारश्च
डॉ० सुधाकर मालवीयः
एम.ए., पीएच.डी., साहित्याचार्यः,
निदेशकः
महामना संस्कृत अकादमी
(लब्धावकाशः) संस्कृत विभागः, कलासङ्कायः
काशी हिन्दू विश्वविद्यालयः, वाराणसी

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
वाराणसी

उसकी टीका राघवभट्ट की सत्सम्प्रदायकृत् 'पदार्थादर्श' से सहायता ली है। अनेक सन्दर्भों में मुख्यरूप से 'कुलार्णवतन्त्र' एवं 'ज्ञानार्णवतन्त्र' तथा 'मन्त्र-महोदधि' से सहायता ली गयी है। इस प्रकार तन्त्रगत मौलिक सिद्धान्त का प्रतिपादन अत्यन्त सरल रूप से प्रस्तुत किया गया है। तृतीय पटल में माया के आवरण से आच्छन्न सभी देवताओं के गर्वों (अहङ्कार) को समाप्त कर देने के सन्दर्भ का सङ्कलन मुझे प्रथम बार एक स्थान पर देखने को मिला। इनमें कुछ के आख्यान मुझे स्वयं भी मालूम नहीं है। इन्हें खोजकर अलग से एक स्थान पर आख्यान सहित सङ्कलन करना चाहिए। शरभावतार द्वारा भगवान् शङ्कर ने भगवान् नृसिंह के अहङ्कार का शमन किया था। यह विषय 'आकाशभैरवकल्प' में आया है। पीताम्बरापीठ, दतिया के स्वामीजी जिस प्रकार शास्त्रज्ञ एवं साधक दोनों ही थे, उसी प्रकार आचार्य द्विवेदीजी को भी माँ दुर्गा इष्ट थीं और वे शास्त्रज्ञ तथा साधक दोनों थे।

आगमरहस्य का विषय विवेचन

प्रथम पटल में सृष्टि निरूपण है। मङ्गलाचरण तथा गुरु के प्रणामानन्तर जयपुर के महाराज रामसिंह को आशीर्वाद देकर ग्रन्थकार ने अपने आश्रयत्व के लिए कृतज्ञता व्यक्त की है। शैव, शाक्त एवं वैष्णव आगम सम्प्रदाय का अवलोकन कर इस आगमरहस्य की रचना की गई है। इस पटल में पहले सम्पूर्ण ग्रन्थ की विषयानुक्रमणिका प्रस्तुत की गई है। फिर सृष्टिभेद, तत्त्व-निरूपण, तत्त्वभेद, नादसृष्टि, कुण्डली एवं देवी से विन्दु सृष्टि आदि का विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय पटल में वर्ण और उसकी अभिव्यक्ति तथा प्रणव के अङ्ग पञ्चकला भेद का प्रतिपादन है। वर्णों का शिवशक्तिमयत्व का प्रतिपादन करके उन मातृका वर्णों की पञ्चभूतात्मकता एवं सोमसूर्याग्निभेद का विधान किया गया है। प्रणव की पचास कलाएँ और उनकी उत्पत्ति का निरूपण है। मन्त्रों का अग्नीषोमात्मकत्व एवं उनके प्रबोध के काल का वर्णन है।

तृतीय पटल में बीज से उत्पन्न होने वाली सृष्टि और कर्म से उत्पन्न हुए इस आत्मायतन देह का तथा उस शरीर का मिथ्यात्व एवं मोह की महत्ता का वर्णन है। इसलिए मनुष्य को उपासना में प्रवृत्त होना चाहिए। यहीं पर चार प्रकार की भक्ति का भी वर्णन है।

चतुर्थ पटल में मोक्षरूप पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिए दीक्षा की आवश्यकता और मन्त्रग्रहण आदि विषयों का प्रतिपादन है। दीक्षा शब्द के अर्थ का विवेचन कर अदीक्षित का सारा कर्म व्यर्थ कहा गया है। अत: जप का मूल दीक्षा है और

तप भी दीक्षामूलक ही है। पत्थर पर बीज बोने का कोई फल नहीं। अत: गुरु से दीक्षा ग्रहण करे। गुरु शब्द का अर्थ और गुरु के लक्षणों को कहकर निन्दित शिष्य के लक्षण कहे गए हैं। गुरु और शिष्य की परीक्षा न करने से दोष बतलाए गए हैं। दीक्षा देने के लिए पिता अधिकारी नहीं है किन्तु माता दीक्षा देने के लिए प्रशस्त कही गई है। इसी सन्दर्भ में स्त्री का गुरु बनाने के विषय में विचार और बिना गुरु बनाए मन्त्र-ग्रहण पर विचार किया गया है। अपने देश में उत्पन्न गुरु के गुण एवं दोष पर विचार, गुरु का धर्म और मन्त्र प्रदान में दीक्षा देने का फल कहा गया है। अपने नाम वाले गुरु का निषेध तथा शूद्र को दीक्षा देने का विचार प्रस्तुत किया गया है।

शूद्र जाति के साधक को गोपाल मन्त्र एवं महेश्वर मन्त्र देना चाहिए। उसकी पत्नी को सूर्य या गणेश का मन्त्र दिया जा सकता है। फिर ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य वर्णपरक मन्त्रों के नियम बतलाए गए हैं और सिद्ध साध्यादि शुद्धि से रहित मन्त्रों का विवेचन है। फिर काली, तारा आदि दस सिद्ध विद्याओं का निर्देश है जिनके मन्त्र में सिद्धादि शोधन की आवश्यकता नहीं होती है। गुप्त रूप से दीक्षा लेने की विधि का वर्णन करते हुए अश्वत्थ एवं वट आदि के पत्र पर मन्त्र लिखने का निर्देश किया गया है। मन्त्र की प्राणप्रतिष्ठा के बाद ही उसे ग्रहण किया जाता है। दीक्षा के विषय में चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण काल प्रशस्त माना जाता है। इस समय नक्षत्र एवं राशि आदि विचार भी नहीं किया जाता। उत्तम शाक्त साधक को सभी काल में पूजा करनी चाहिए। उसे जननाशौच और मरणाशौच का भी विचार नहीं करना चाहिए क्योंकि मन्त्रज्ञ साधक का अन्तर्याग निरन्तर चलता रहता है।

पञ्चम पटल में श्रीगुरु के प्रति आचार का निरूपण किया गया है। बिना गुरु की आज्ञा के कोई कर्म न करे। यात्रा, पूजन एवं भोजन आदि भी गुरु की आज्ञा लेकर ही करे। परातन्त्र के अनुसार गुरु की पूजा का विधान किया गया है। गुरु की नित्य पूजा से माता त्रिपुरसुन्दरी प्रसन्न होती हैं। शिष्य द्वारा गुरु के समीप में रहकर सदाचार का पालन करना चाहिए। शिष्य के घर गुरु के पधारने पर उसका वह दिन सूर्य एवं चन्द्रग्रहण के समान पुण्यकाल वाला हो जाता है।

षष्ठ पटल में उपासना के क्रम का विवेचन है। ब्रह्म वस्तुत: निर्गुण है। किन्तु उनके शरीर की कल्पना उपासकों के कार्य के लिए की गई है। शक्ति एवं शक्तिमान् के भेद की कल्पना फल की दृष्टि से की गई है। किन्तु तत्त्वदर्शी योगीजन उनमें अभेद का ही दर्शन करते हैं। पुरुष रूप में दशावतार तथा स्त्रीरूपा भगवती में अभेद सम्बन्ध है। ईश्वर की प्रशंसा से न दु:ख ही होता है और न तो सुख ही होता है। सृष्टि मात्र में महामाया की ही सत्ता है। केवल नाम से ही उनमें भेद प्रतीत होता है।

पाँच प्रकार की प्रकृति का विवेचन करके दस विद्या के क्रम का विवरण दिया गया है । फिर अन्य छह विद्याओं को मिलाकर कुल सोलह महाविद्याएँ कही गई हैं । दसों महाविद्याओं के दस भैरवों का भी निर्देश किया गया है । इन दस विद्याओं के प्रादुर्भाव का वर्णन शक्तिसङ्गमतन्त्र के अनुसार कहा गया है । काली तारा आदि दस महाविद्याओं के उत्पत्ति की कथा बताकर उनके अङ्ग भेद भी बताए गए हैं । भादों मास की चतुर्थी तिथि को गणेश की उत्पत्ति कही गई है । इसी प्रसङ्ग में पुरुष एवं प्रकृति में अभेद सम्बन्ध बताया गया है । आद्या ललिता ने पुरुष रूप में कृष्ण रूप धारण कर वेणुवादन किया था । आद्या तारा ने पुरुष रूप से श्रीराम का रूप धारण कर समुद्र आदि का निग्रह किया था । इसी प्रकार छिन्नमस्ता ने नृसिंह रूप धारण किया । भुवनेश्वरी ने वामन रूप और सुन्दरी परशुराम हो गई, धूमावती मीन बन गई, बगलामुखी ने कूर्म रूप धारण किया और भैरवी ने बलभद्र रूप में अवतार लिया, महालक्ष्मी बौद्धरूप में अवतरित हुई और आगे दुर्गा कल्कि रूप में अवतार लेंगी । इसलिए शक्ति ही सबका मूल होने से और कोमल अन्त:करण होने से तथा भुक्ति-मुक्ति दोनों प्रदान करने के कारण शक्ति ही सर्वार्थसाधिका कही गई है ।

सातवें पटल में प्रात:कृत्य का निरूपण किया गया है । ब्राह्ममुहूर्त्त में उठकर गुरु एवं देवता का ध्यान करना चाहिए । मन्त्र स्नान आदि बताकर मानस पूजा का क्रम बतलाया गया है । श्री गुरुस्तोत्र का विधान करके इडा आदि नाडी का स्वरूप बतलाया गया है । नाडियों में मेरुदण्ड सबसे प्रधान है । इडा नाडी चन्द्ररूपिणी है और पिङ्गला सूर्यविग्रहा है । क्रमश: दोनों शक्ति एवं पुरुष स्वरूपा हैं । सुषुम्णा नाडी अग्निस्वरूपा है । षट्चक्रों का निरूपण करते हुए उनके पद्मों को ऊर्ध्वमुख बतलाया गया है । इन्हीं षट्चक्रों में पञ्चमहाभूत की स्थिति का वर्णन है ।

इसके बाद कुण्डलिनी योग का वर्णन किया गया है । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव और परशिव—ये छह शिवसंज्ञक हैं । डाकिनी, राकिनी, शाकिनी, लाकिनी, काकिनी और हाकिनी—ये छह उन शिवों की शक्तियाँ हैं । षट्चक्र के ऊपर ऊर्ध्व चक्र में सदाशिव का निवास है । सदाशिव के ऊपर महाशक्ति का स्थान है । इसीलिए साधक हंस रूप अजपा जप का जप करते हैं। संसार यात्रा के लिए प्रार्थना मन्त्र का विधान किया गया है । अजपा गायत्री मुनियों को मोक्ष देने वाली है । शारदातिलक के अनुसार अजपा मन्त्र का उद्धार एवं ध्यान बतलाया गया है । अन्त में पृथिवी के प्रणाम मन्त्र एवं शौच कर्म का निरूपण है ।

आठवें पटल में स्नानादि कर्म का निरूपण किया गया है । स्नान क्रिया

आन्तरिक एवं बाह्य होती है । तीर्थ के अभाव में स्नान की विधि तथा शैव एवं वैष्णव भेद से तिलक लगाने की विधि का निरूपण है । तान्त्रिक सन्ध्योपासन एवं त्रिकाल गायत्री का ध्यान कहा गया है । सन्ध्या भङ्ग होने पर प्रायश्चित्त बतलाया गया है । आचमन के लिए कितना प्रमाण जल अपेक्षित है? यह कह कर आचमन का फल बतलाया गया है । सामान्यार्घ्य विधि, द्वारपूजा विधि और देवताओं के द्वारपाल का विधान है । भूतोत्सारण करके याग मण्डप में प्रवेश की विधि एवं पूजा कही गई है ।

नवम पटल में भूतशुद्धि का विवेचन है । प्राणप्रतिष्ठा विधि एवं उसका मन्त्र कहकर षडङ्गन्यास का विधान है । अर्घस्थापन की विधि, विभिन्न प्रकार के शंख के लक्षण और अन्तर्याग का क्रम बतलाया गया है । पीठपूजा एवं प्रतिमा पूजा का नियम बताकर सूर्य, दुर्गा आदि पञ्चायतन के देवताओं की स्थिति व्यवस्था दी गई है । विभिन्न उपचार के मन्त्रों का विवेचन है । पुष्प आदि के ग्राह्याग्राह्य नियम का कथन है । पुष्पों के निर्माल्य का कथन है । दिक्पाल के मन्त्र का उद्धार करके दिक्पाल की मुद्रा का विधान है । धूप, दीप, नैवेद्य की विधि बताकर प्राणादि पाँच मुद्राओं का कथन है । वैश्वदेव बलि बताकर देवताओं के उच्छिष्ट-भोजी के नाम बतलाए गए हैं । शिव इत्यादि विभिन्न देवताओं की प्रदक्षिणा कैसे करनी चाहिए? इसका विधान है । जैसे शिव की अर्धचन्द्राकार रूप से अर्ध परिक्रमा होती है । ब्रह्मार्पण मन्त्र कथन के बाद पञ्चधा-पूजा देवता के भेद से बतलाई गई है ।

दशम पटल में न्यासों का माहात्म्य और भूतशुद्धि से पाप पुरुष के अपसारण का विधान है । मातृकान्यास और उसकी विधि, अन्तर्मातृकान्यास तथा बहिर्मातृकान्यास का कथन है । गृहस्थ, यति आदि आश्रमपरक सृष्ट्यादि न्यास का क्रम एवं मातृका के भेद तथा काम्य मातृकाओं को कहा गया है । त्रिमधु का लक्षण, दशविध मातृकान्यास, प्राणायाम की विधि और उपासना-भेद से मातृका-न्यास का विधान है । इसी सन्दर्भ में श्रीकण्ठमातृका न्यास, केशवादि मातृका न्यास तथा गणेशमातृका न्यास एवं शक्तिन्यास में कलादि का न्यास विवेचित किया गया है । पीठमातृकान्यास, ऋष्यादिन्यास तथा षडङ्गन्यास एवं उनका प्रयोजन कहा गया है ।

एकादश पटल में जपमाला का और मन्त्र एवं यन्त्र के संस्कार का प्रतिपादन है । मन्त्रों के दस संस्कार करके तब उनका जप किया जाता है, मन्त्रदोष की निवृत्ति के लिए योनिमुद्रा का कथन है । मन्त्र शोधन के अन्य प्रकार को बताकर माला के संस्कार का विस्तृत विवेचन है । पहले वर्ण (मातृका) माला, करमाला तथा अक्षमाला के भेद कहे गए हैं । देवविशेष में मणियों की

माला का प्रयोग बतलाया गया है। माला के संस्कार का काल तथा माला गूँथने की विधि का विस्तार से वर्णन है। अक्ष में मुख और पुच्छभाग का निर्णय तथा माला की प्रतिष्ठा का विधान है। फिर पञ्चगव्य में उसकी पूजा कर मालाशोधन के मन्त्र का विवेचन है। उपांशु आदि जपविधि का प्रतिपादन कर गोमुखी के लक्षण बतलाए गए हैं। मालामन्त्र का विधान एवं प्रतिष्ठित माला से जप की विधि वर्णित है। अन्त में यन्त्र का संस्कार, यन्त्र का स्थापन तथा उस यन्त्र की पूजाविधि का विवेचन है।

द्वादश पटल में पुरश्चरण के स्थान का निर्णय तथा कूर्मचक्र में दीपस्थापन की विधि और पुरश्चरण में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न प्रयोगों के अनुसार मृगचर्मादि आसनों का विधान है। जप का लक्षण, मन्त्र एवं देवता में अभेदज्ञानपूर्वक पुरश्चरण करे। मन्त्रस्थान तथा मन्त्रचैतन्य का निरूपण है। योनिमुद्रा एवं मन्त्र-शिखा का वर्णन करके जपयज्ञ की विधि में कुल्लुका आदि दस सङ्केत का विधान है। मुखशोधन का कथन और निद्रित मन्त्रों का विवेचन प्रस्तुत है।

त्रयोदश पटल में पुरश्चरण के नियम बतलाए गए हैं। पुरश्चरण का अनुष्ठान ब्राह्मण भोजनान्त होता है। साधक को निषिद्ध भोजन नहीं करना चाहिए क्योंकि यह सिद्धि में बाधक है। पुरश्चरण काल में दूध, दही, मूँग, केला, नारियल आदि हविष्यान्न का भोजन करना चाहिए। यहीं पर निषिद्ध शाक का भी विवरण दिया गया है। मधु, ताम्बूल, लहसुन, दिन में भोजन आदि निषिद्ध है।

दूसरों के द्वारा प्रदत्त अन्न से जो धर्म का सञ्चय होता है उसमें अन्न देने वाले को पुण्य का आधा फल प्राप्त हो जाता है। पुरश्चरण काल में छींक आदि आने पर या अभद्र शब्द निकालने पर 'प्राणायाम' रूप प्रायश्चित्त किया जाता है। बिल्ली, वानर आदि को देख लेने पर आचमन करके जप किया जाता है। इसी संदर्भ में जप के नियम बतलाए गए हैं। एक वस्त्र से मन्त्र का जप न करे और बहुत से वस्त्रों से आच्छादित होकर भी जप न करे। चन्द्रमा एवं नक्षत्र के अनुकूल होने पर जप प्रारम्भ करे। इसी संदर्भ में पुरश्चरण के लिए निषिद्ध मास एवं तिथियों का विधान किया गया है। पुरश्चरण के पूर्व नियमों को कहकर स्वप्नमाणव मन्त्र का विधान है। स्वप्न के शुभ एवं अशुभ फल का कथन है जैसे काम्य कर्म करने पर स्वप्न में यदि स्त्री दिखलाई पड़े तो समृद्धि समझना चाहिए। मन को खेद उत्पन्न करने वाले अशुभ स्वप्न होते हैं। दुःस्वप्न की शान्ति के लिए दन्त काष्ठों से अथवा घृत एवं सिंह मन्त्र से होम कराना चाहिए। पुरश्चरण के लिए नगर आदि से दूर नदी के किनारे स्थान प्रशस्त कहा गया है। वहाँ कुटी का निर्माण करना चाहिए और क्षेत्र को कीलित करके उन्नास क्षेत्रपालों का पूजन विधि-विधान के अनुसार करना चाहिए।

चतुर्दश पटल में होम आदि का विधान किया गया है । मन्त्रवेत्ता प्राणायाम करके षडङ्गन्यास करे । फिर बेदी का चार संस्कार करके यन्त्र बनाए । तब पीठ पर पीठशक्तियों आदि को आसन देकर अग्निमन्त्र से अग्नि स्थापन करे । अग्नि मन्त्रोद्धार करके अग्नि की तीन प्रकार की जिह्वाएँ बतलायी गई हैं । अग्निदेव का विधिवत् अर्चन करके आठ भैरवों की पूजा करनी चाहिए । स्रुक् स्रुचा का संस्कार करके अभिद्योतन संस्कार करना चाहिए । इसी सन्दर्भ में तर्पण द्रव्य की फलश्रुति कहकर अभिषेक का विधान है । वह्निचक्र का निरूपण करके काम्य होम में वह्नि की स्थिति का वर्णन है । कामना भेद से अग्नि की जिह्वाओं के फल का कथन है । अन्त में होम द्रव्यों के प्रमाण का विधान करके स्रुवा निर्माण की विधि बतलाई गई है ।

पन्द्रहवें पटल में दमनकपूजा एवं पवित्रार्चा का विधान है । वर्षभर की पूजा का फल प्राप्त करने के लिए यह पूजा चैत्र एवं श्रावण मास में की जाती है । चातुर्मास्य के प्रवेश में दमनक पूजा कर देवों को उसका अर्पण नहीं करना चाहिए । दमनक में कामदेव एवं रति की पूजा होती है । भूपुरयुक्त अष्टदल कमल निर्माण कर अथवा स्वनिर्मित मण्डल (सर्वतोभद्रमण्डल) में बाँस के पात्र में रक्खे हुए दमनक को स्थापित कर पूजा की जाती है । 'कामदेवाय विद्महे' आदि कामगायत्री का उद्धार करके दमनक के अधिवासन का वर्णन है ।

पवित्रार्चा का उत्तम काल आषाढ मास है, मध्यम श्रावण है और भाद्रपद अधमकाल है । देवताओं को अपनी-अपनी तिथि में पवित्रारोपण करना प्रशस्त कहा गया है । पवित्रा सोने, चाँदी, ताँबा या कपास सूत्र की बनाई जाती है । यह सूत ब्राह्मणी द्वारा काता गया होना चाहिए । सूत्र को नवगुणित कर १०८ बार मूल गायत्री से उसे अभिमन्त्रित कर बाँस के पात्र में स्थापित करते हैं । षोडशदल कमल यन्त्र पर आठ रंगों से उसे रंगकर पूजा की जाती है । इस पवित्रा पर ३२ देवों का आवाहन होता है । जयजयकार करते हुए देवता के गले में मूल मन्त्र पढ़कर पवित्रा पहनाने का विधान है । अन्त में आषाढी पूर्णिमा से कार्त्तिकी पूर्णिमा तक सभी के लिए चातुर्मास्य का विधान किया गया है । इस समय कुछ न कुछ नियम का पालन अवश्य करना चाहिए । देवी भागवत में इस काल को 'यमदंष्ट्रा' कहा गया है । वैज्ञानिक बात यह है कि इस समय ऋतु परिवर्तन के कारण अधिक से अधिक लोग रोगग्रस्त हो जाते है । अत: ब्रह्मचर्य एवं आहार-विहार के नियमों के पालन से साधक स्वस्थ रहता है ।

सोलहवें पटल में कुमारी पूजन और शिवा बलि का विधान है । कुमारी साक्षात् योगिनी और पर देवता कही गयी है । कर्म की सिद्धि के लिए साधक को दो से लेकर दस वर्ष तक की कुमारी का पूजन करना चाहिए । अप्राप्त होने पर

सोलह वर्ष तक की पुष्परहिता कुमारी का पूजन किया जा सकता है । कुमारी पूजन का क्रम और उनके मन्त्र का विधान कुमारियों के आयु के हिसाब से किया गया है । साधक कुमारी को पूजा गृह में ले आवे और त्रिकोण में अन्न की बलि देकर कुमारियों के अङ्गों में अक्षत से न्यास करे । उनके पञ्चागन्यास का वर्णन करके वाग्भव (ऐं) आदि बीजों के फल कहे गए हैं । उन कुमारियों के दाहिने ओर शिशु गणेश का तथा बटुक भैरव (पाँच वर्ष के बालक) का पूजन करना चाहिए ।

इसके बाद कुमारी पूजन, कुमारियों के तान्त्रिक नाम के अनुसार मन्त्र पूर्वक गन्धादि से करना चाहिए । उन सुप्रसन्न कुमारियों के अङ्गों में जया, विजया आदि पचास शक्तियों की पूजा करनी चाहिए । विघ्न के विनाश के लिए अष्ट भैरव एवं क्षेत्रपाल आदि का पूजन करना चाहिए । फिर अष्ट शक्तियों का एवं त्रिकोण में अनङ्गकुसुमा आदि छह देवियों का पूजन करना चाहिए ।

इसके बाद शिवा बलि का वर्णन किया गया है । यह अपने इष्ट देवता की संतुष्टि के लिए किया जाता है । इससे साधक शक्तिमान होता है । भगवति प्रसाधन स्तोत्र का पाठ करके साधक शिवा को प्रसन्न करता है । बलि तीन प्रकार की कही गई हैं—सात्विक, राजस एवं तामस । निवृत्ति मार्ग के साधक फल पुष्प आदि से सात्विक बलि देते हैं । यहीं पर महाकाल संहिता के अनुसार बलि देने वाले के उपयुक्त कूष्माण्ड, दुग्ध पिण्ड (खोवा) आदि द्रव्यों का विधान किया गया है । प्रवृत्ति मार्ग वाले साधक के लिए मृग एवं पक्षियों के बलिदान की बात कही गई है । प्रायः यह बलि क्षत्रिय साधकों के लिए ही विहित है । हिंसा न करने का उपदेश भी यहाँ दिया गया है । आठ प्रकार के हत्यारे नरकगामी होते हैं । वेद में पितर देवता और यज्ञ में यद्यपि हिंसा का विधान है किन्तु यज्ञेतर में अहिंसा ही परमधर्म कहा गया है । अन्त में बलिदान की फलश्रुति का कथन है ।

सत्रहवें पटल में मन्त्रसिद्धि के उपाय एवं सपर्या का वर्णन है । भ्रामण बोधन आदि मन्त्र सिद्धि के सात उपाय बतलाए गए हैं । मन्त्र सिद्धि में कारणभूत मात्रिकाओं से सम्पुटित कर मन्त्र जपना भी अन्य उपाय बतलाया गया है । पुरश्चरण की विधि कहते हुए प्रयोग की तिथियों का विधान किया गया है । यहीं पर पुरश्चरण में बहुत समय न लगे इसलिए प्रशस्त काल चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण का विधान है । ग्रहण के समय शाक्त, शैव, विष्णु या गाणपत्य मन्त्र जप से सिद्ध हो जाते हैं । ग्रहण काल में प्रयोग का विधान कह कर पुरश्चरण का अन्य प्रकार का विधान कहा गया है ।

मन्त्र के जप से पुरुष के घर में लक्ष्मी एवं जिह्वा पर सरस्वती एवं हृदय में

लक्ष्मीनारायण का निवास होता है । कण्ठ देश में ब्रह्मा एवं शिव निवास करते हैं। जैसे अग्नि तृण को जला देती है वैसे ही शत्रुओं को जलाकर मन्त्र के देवता साधक की रक्षा करते हैं । नारद पाञ्चरात्र एवं तन्त्रशेखर के अनुसार सिद्धि के चिन्हों को बतलाया गया है । पहले तो बहुत विघ्न आते हैं किन्तु बाद में राजा, प्रभु एवं अत्यन्त मानी व्यक्ति भी अनुरोधपूर्वक उनकी प्रार्थना करते हैं । मन्त्र सिद्ध साधक के हृदय में अत्यन्त आनन्दप्रद दृश्यों का एवं अन्तरिक्ष से मधुर गाजे-बाजे की ध्वनि तथा कर्पूर आदि की तीक्ष्ण सुगन्ध अनायास ही सूँघता है । स्वयं वह तेज में सूर्य के समान तेजस्वी हो जाता है । उत्तम, मध्यम, अधम भेद से सिद्धि तीन प्रेकार की कही गई है ।

इसी प्रकार तत्त्वसागर संहिता के अनुसार उत्तम, मध्यम, अधम भेद से पूजा भी तीन प्रकार की कही गई है । वेदार्थों का ज्ञान सात्विक पूजा है । भगवत्तत्त्व के ज्ञाता तपोनिष्ठ राजर्षि द्वारा की गई पूजा राजसी पूजा है । मूर्खों के द्वारा की जाने वाली पूजा तामसी पूजा होती है । इसके बाद विष्णु के उपचार की विधि एवं उनको समर्पित करने वाले पदार्थों का वर्णन किया गया है । एक मनुष्य जितना खा सके उतना नैवेद्य जनार्दन को देना चाहिए ।

योगिनी तन्त्र के अनुसार निर्माल्य का काल बतलाया गया है । ताम्र आदि के पात्र बारह वर्ष के बाद निर्माल्य होते हैं । वस्त्र छह मास के बाद और नैवेद्य समर्पित करने के बाद ही निर्माल्य हो जाते हैं । पत्र, पुष्प, फल एवं जल पर्युषित होने पर नहीं चढ़ाना चाहिए । अनार और बिल्वफल कभी निर्माल्य नहीं होते ।

इसके बाद अट्ठारह उपचार, षोडश उपचार, दश उपचार एवं पञ्च उपचार बतलाए गये हैं । शारदातिलक के अनुसार विष्णु एवं शिव के तथा शक्ति के अलग-अलग गन्धाष्टक द्रव्यों का वर्णन है । ज्ञानमालातन्त्र के अनुसार विहित एवं दोषावह पुष्पों का विधान किया गया है । किस वर्ण के पुष्प भगवती को न समर्पित करे और कौन से फल देव यजन के लिए श्रेष्ठ हैं; यह बतलाया गया है। जपा पुष्प पुष्पों में सर्वदेवमय कहा गया है । इसके मूल में ब्रह्मा, मध्य में जनार्दन और अग्रभाग में शिव का निवास है ।

तुलसी ब्रह्मरूपा एवं सर्वदेवमयी कही गई है । पुष्पों को अधोमुख या ऊर्ध्वमुख चढ़ाने का विधान करके पुष्पों को तोड़ने का काल बतलाया गया है जैसे मध्याह्न में पुष्प न तोड़े । दूषित धूप न जलावे । मिश्रित तैल का प्रयोग दीप में न करे । फिर दीपदान की विधि बतलाकर प्रदक्षिणा का क्रम बतलाया गया है। त्रिपुरा की त्रिकोण परिक्रमा होती है । मानसिक, कायिक एवं वाचिक भेद से नमन तीन प्रकार का होता है । अन्त में पञ्चाङ्ग एवं अष्टाङ्ग प्रणाम की विधि

बतलायी गई है ।

अट्ठारहवें पटल में प्रायश्चित्तादि का निरूपण किया गया है । विहित कर्म न करने पर प्रायश्चित्त किया जाता है । इसी सम्बन्ध में विष्णु के विषय में ३२ अपराधों का विवेचन है । इसके प्रायश्चित्त के लिए दस सहस्र जप का विधान किया गया है । संयोग से शरीर पर पहने हुए कवच के नष्ट हो जाने पर मातृकाओं के पाठ से प्रायश्चित्त कहा गया है । यन्त्र के नष्ट हो जाने पर उसके पूजन एवं पुन: धारण करने की विधि बतलायी गयी है । पूजा काल में यन्त्र के गिर जाने पर प्रायश्चित्त बतलाया गया है । माला के नष्ट होने पर सहस्र जप एवं ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए । गुरु के क्रोध करने पर स्वयं उपवास कर गुरु को प्रसन्न करे । भगवान् को बिना निवेदन किए हुए भोजन न करे । शालिग्राम का चरणामृत करोड़ों जन्मों के पापों को नष्ट कर देता है ।

इसी सन्दर्भ में शालिग्राम के प्रकारों का निर्देश किया गया है । लम्बी सुवर्ण की रेखा के समान आभा वाली बिन्दुत्रय से विभूषित शिला मत्स्य नाम वाली कही गई है जो समस्त भोग और मोक्ष प्रदान करने वाली होती है । इसके बाद वैष्णवों की द्वादश प्रकार की शुद्धि का निरूपण किया गया है जैसे भगवान के मन्दिर में जाना, उनका चरणोदक एवं निर्माल्य आदि धारण करना । तुलसी ग्रहण करने का दिन इत्यादि का कथन करके ललाट पर तिलक लगाने का विधान बतलाया गया है । लिङ्ग की परीक्षा सूतसंहिता के अनुसार बतलायी गई है । स्वयंभूलिङ्ग, नीलकण्ठ एवं महाकाल आदि गुप्त लिङ्गों के चिन्हों को बतलाया गया है । रुद्राक्ष धारण की विधि एवं तुलसीमाला ग्रहण की विधि बतलायी गई है । किन-किन अङ्गों में कितने रुद्राक्ष की माला धारण करना चाहिए इसका विधान किया गया है । फिर षोडशोपचार के श्लोक मन्त्रों का विधान है ।

उन्नीसवें पटल में मन्त्रों के दोषों एवं उनके शोधन के उपाय आदि का कथन है । मन्त्रों की शुद्धि छह प्रकार के चक्रों से की जाती है । वैष्णवों के लिए तारा चक्र से शुद्धि आवश्यक है । शैवों के लिए कोष्ठ-शुद्धि एवं त्रिपुरा मन्त्र में भी तारा चक्र से शुद्धि करनी चाहिए ।

पिण्ड मन्त्र, तारा विद्या के मन्त्र में, षडक्षर मन्त्र में, प्रासाद, सूर्य, त्रिपुरा, नारसिंह, मालामन्त्र, वाराहमन्त्र, काममन्त्र, अस्त्रमन्त्र, स्त्री से प्राप्त मन्त्र, वेदमन्त्र एवं रत्न से प्राप्त मन्त्र में कोई दोष नहीं होता । साधक के नाम के आदि वर्ण से मन्त्र के आदि अक्षर पर्यन्त संशोधन करना चाहिये । कुलाकुल भेद का कथन करके मन्त्रशोधन कैसे करना चाहिए यह बतलाया गया है । जैसे पार्थिव वर्णों के वारुण अक्षर मित्र हैं किन्तु आग्नेय अक्षर उनके शत्रु हैं ।

राशि चक्र से वर्णों को लिखकर मन्त्रों की शुद्धि का वर्णन है । अश्विनी,

भरणी, कृत्तिका आदि सत्ताइस नक्षत्रों को लिखकर मन्त्र की शुद्धि की जाती है। इनमें नौ नक्षत्र मानुष हैं, नौ नक्षत्र राक्षस हैं और नौ दिव्य नक्षत्र हैं। इनमें योनि मैत्री से मन्त्र की शुद्धि की जाती है। जैसे गौ का शत्रु व्याघ्र है।

इसके बाद अ क थ ह चक्र से मन्त्र की शुद्धि बतलायी गई है। सोलह कोष्ठक में वर्णों को लिखकर सिद्ध, साध्य आदि से मन्त्र की शुद्धि देखी जाती है। फिर निबन्ध ग्रन्थ के अनुसार साध्य, सिद्धि, साध्य-साध्य, साध्य-सुसिद्ध और साध्यारि से मन्त्र की शुद्धि एवं उनके फल का वर्णन है। सुसिद्धारि मन्त्र कुटुम्ब मात्र का नाशक होता है अत: मन्त्र का संशोधन अवश्य करना चाहिए। फिर अकडम चक्र से मन्त्र की शुद्धि बतलायी गयी है। बारह कोष्ठों में नपुंसक वर्णों को छोड़कर चार-चार के क्रम से मातृका वर्णों को लिखा जाता है और उसी से सिद्धादि क्रम से गणना की जाती है। अन्य प्रकार से मन्त्रांशक अर्थात् जिस कोष्ठ में नाम के वर्ण और मन्त्र के वर्ण एकत्र मिलें उससे सिद्ध-साध्यादि का शोधन समझा जाता है।

इसके बाद ऋणधन शोधन चक्र से मन्त्र की शुद्धि बतलायी गई है। ऋणधन बराबर होने पर मन्त्र जप किया जा सकता है किन्तु ऋणी मन्त्र का जाप कदापि न करे। शून्य शेष होने पर मृत्यु रूप फल होता है अत: ऐसा मन्त्र ग्रहण न करे। षट्कोण चक्र में नपुंसक स्वरों को छोड़कर अकार से हकार पर्यन्त वर्णों को लिखा जाता है। तदनन्तर नाम के प्रथम अक्षर से मन्त्र के प्रथम अक्षर से मन्त्र के प्रथम अक्षर तक संशोधन होता है। शारदातिलक के अनुसार अपने अक्षर और अपनी राशि के द्वारा मन्त्र के अनुकूल न होने पर मन्त्र ग्रहण न करे। इसके बाद छिन्न, रुद्ध एवं पराङ्मुख आदि मन्त्र के उच्छ्वास दोषों का वर्णन किया गया है।

बीसवें पटल में दीक्षा विधि एव वास्तु याग का वर्णन किया गया है। दीक्षा ग्रहण का काल निरूपण करके प्रयाग, काशी आदि पुण्य क्षेत्रों में दीक्षा ग्रहण करने के लिए कहा गया है। सूर्य एवं चन्द्र ग्रहण में मन्त्र दीक्षा के लिए तिथि देश काल आदि का विचार आवश्यक नहीं है। सनत्कुमार संहिता में विभिन्न मासों में प्राप्त दीक्षा ग्रहण का फल बतलाया गया है। आगम कल्पद्रुम के अनुसार विभिन्न तिथियों में ग्रहण की गई दीक्षा के फल का निरूपण है जैसे प्रतिपद में प्राप्त दीक्षा ज्ञान का नाश करती है और पञ्चमी तिथि में प्राप्त दीक्षा बुद्धि को बढ़ाती है।

तत्त्वसार तन्त्र के अनुसार देवताओं की तिथि का वर्णन है जैसे ब्रह्मा की तिथि पूर्णमासी है और द्वादशी विष्णु की तथा चतुर्दशी शिव की है। इसके बाद विभिन्न वारों में प्राप्त हुई दीक्षा का वारों के अनुसार फल का निरूपण है। इसके

बाद अश्विनी आदि नक्षत्रों में ग्रहण की गई दीक्षा के फल का निरूपण है जैसे पञ्चमी तिथि में कृत्तिका एवं द्वादशी में आश्लेषा नक्षत्र लुप्ता तिथि है । यह देवताओं को भी नष्ट कर देने वाली है । इसके बाद दीक्षा के लिए सोलह योग एवं वव, वालव आदि कर्णों का वर्णन है । दीक्षा ग्रहण में चर राशियाँ न लेकर स्थिर राशि सिद्धिप्रद होती हैं ।

इसके बाद वास्तु निरूपण किया गया है । समतल भूमि पर निर्मित गृह सुखकारक होते हैं । ब्रह्मा से लेकर अदिति पर्यन्त तिरपन देवता उस वास्तु नामक देवता का वध करके उसके शरीर पर संस्थित हैं । अतः उनको बिना बलि दिये हुए गृहनिर्माण नहीं करना चाहिए । शारदातिलक के अनुसार चौंसठ कोष्ठ का मण्डल बनाकर बलि देनी चाहिए । महाकपिलपञ्चरात्र में वास्तु के शरीर पर स्थित देवताओं के स्थान बतलाए गए हैं । अतः उन्हीं स्थानों पर बलि मन्त्रों से उन-उन देवताओं को बलि (अन्न आदि) प्रदान करनी चाहिए ।

देवताओं के आसन मन्त्र कहकर उन देवताओं के स्वरूप का वर्णन किया गया है । जैसे इन्द्र अरुण वर्ण के हैं और आदित्य रक्त वर्ण के हैं । इसके बाद पायस, उरद इत्यादि से विभिन्न देवताओं को बलि देने के लिए श्लोक मन्त्रों का विवेचन है । प्रयोगसार के अनुसार विभिन्न दिशाओं के दिक्पालों को बलि देने का विधान है । गृहारम्भ एवं गृह शान्ति के लिए वास्तु पूजन आवश्यक है ।

मण्डप निर्माण का विधान विभिन्न तन्त्र ग्रन्थों के अनुसार बतलाया गया है । दिशाओं के ज्ञान की विधि बतलायी गयी है । रात्रि में चित्रा, स्वाती आदि नक्षत्र से प्राची दिशा का ज्ञान बतलाया गया है । यज्ञ मण्डप में पूर्व दिशा में न्यग्रोध का तोरण, दक्षिण में गूलर, पश्चिम में पीपल और उत्तर में पाकड़ का तोरण होना चाहिए । इन्हें 'अग्निमीळे' आदि वेद मन्त्रों से अभिमन्त्रित करना चाहिए । मण्डप की आठों दिशाओं में दिग्पतियों के वर्ग के अनुसार ध्वजाओं का आरोपण करना चाहिए । प्रत्येक द्वार पर कलश रखकर उन पर देवताओं की पूजा होती है । ध्वजाहीन मन्दिर में या गृह में असुर पिशाच आदि निवास करना चाहते हैं । किन्तु अग्नि के समान जाज्वल्यमान ध्वजा को देखकर वे उसी प्रकार भाग जाते हैं जैसे सूर्य को देखकर अन्धकार । पताका की लम्बाई-चौड़ाई का वर्णन करके मण्डप या गृह को अलंकृत करने का विधान किया गया है । घर को केले के खम्भे, विभिन्न फलों, दर्पणों एवं पुष्पों से सुशोभित करना चाहिए । इस प्रकार विधिविधानपूर्वक अपने गृह को प्रकाशित रखने से उसमें देवताओं का वास होता है और वास्तु पुरुष को बलि प्रदान करने से भूत-पिशाच आदि देवयोनियाँ प्रसन्न हो जाती हैं ।

इक्कीसवें पटल में कुण्ड एवं वेदीनिर्माण की विधि बतलायी गई है ।

मण्डप के मध्य भाग में वेदी का निर्माण होता है । वेदी पके हुए ईंटों से चौकोर बनानी चाहिए । विवाह में समतल वेदी होती है । राजा के अभिषेक में सर्वतोभद्रा एवं चतुर्भद्रा वेदी का निर्माण करना चाहिए । वेदी पर ब्राह्मणों के द्वारा पुण्याहवाचन कराकर मङ्गलाङ्कुर का रोपण करना चाहिए । यह कार्य यज्ञ के आरम्भ के सात दिन पहले किया जाता है । शारदातिलक के अनुसार परई, पुरवा आदि पात्रों का अंकुरारोपण के लिए प्रयोग करना चाहिए । इनकी ऊँचाई सोलह या बारह अंगुल होनी चाहिए । यह पात्र त्रिदेवमय कहे गए हैं । इन पात्रों में खाद, बालू मिट्टी भरकर पश्चिम में चार पालिका (हाँडी) मध्य में शराव (परई) रखनी चाहिए । बीज वपन के लिए मन्त्र एवं पञ्च वाद्य द्वारा घोष करके मङ्गलाचार पूर्वक ब्राह्मणों से आशीर्वाद लेना चाहिए । शारदातन्त्र के अनुसार आठों दिशाओं में १. चतुरस्र, २. योनि, ३. अर्धचन्द्र, ४. त्रिकोण कुण्ड, ५. वृत्तकुण्ड, ६. षट्कोण, ७. पद्म एवं ८. अष्टकोण कुण्डों का निर्माण करना चाहिए । अन्त में कुण्ड के फलों का वर्णन तथा उन्हें बनाने की विधि कुण्डसिद्धि तन्त्र के अनुसार बतलायी गई है ।

बाइसवें पटल में सर्वतोभद्र मण्डल बनाने की विधि अत्यन्त विस्तार के साथ कही गई है । इसके बाद पीठ रचना का विधान और उनके रंग एवं स्थान का वर्णन है । इन रंगों के प्रयोग से देवता सन्तुष्ट होते हैं । शारदातिलक के अनुसार नवनाभ मण्डल बनाने की विधि कही गई है ।

तेइसवें पटल में दीक्षाविधि कही गयी है । मन्त्र शब्द में 'म' का अर्थ मनन है और 'त्र' का अर्थ बन्धन से त्राण है । इसलिए मन्त्रदीक्षा दी जाती है । दीक्षा तीन प्रकार की है—१. आणवी, २. शाक्तेयी तथा ३. शाम्भवी दीक्षा । आणवी दीक्षा के बारह भेद और उनके लक्षणों का वर्णन है ।

दिव्य ज्ञान प्रदान कर पापों का क्षय करने के कारण इसे दीक्षा नाम से अभिहित किया जाता है। यह दीक्षा १. क्रियावती, २. वर्णमयी, ३. कलात्मा-दीक्षा और ४. वेधमयी भेद से चार प्रकार की है । शिष्य के विभिन्न अङ्गों में न्यास आदि करके क्रियावती दीक्षा की विधि का विस्तृत विवेचन है ।

चौबीसवें पटल में क्रियावती दीक्षा के प्रसङ्ग में कुण्ड के अट्ठारह संस्कार का वर्णन है । अपने अङ्गों में अग्नि का उपस्थान, उनकी सप्त जिह्वाओं का न्यास एवं अग्नि की जातवेद आदि अष्टमूर्त्तियों का न्यास कर उन्हें मानसिक आसन देने का विधान है । फिर 'अग्नये स्विष्कृते स्वाहा' आदि मन्त्रों से आचार्य होम करे । वस्तुतः इष्टदेवता के मुख में अग्नि के मुखों का अन्तर्भाव होने से एकीकरण किया जाता है । फिर अग्नि, देवता एवं आत्मा इन तीन का नाडीसन्धान (एकीकरण) किया जाता है । फिर अग्नि के अङ्गदेवता एवं उनके

परिवार के अर्चन एवं होम का वर्णन है ।

शिष्य को पञ्चगव्य पिलाकर आचार्य दक्षिण द्वार से यज्ञ मण्डप में लाते हैं । फिर मन्त्राध्वा, तत्त्वाध्वा, वर्णाध्वा (= ये तीन शब्दगत हैं), भुवनाध्वा, तत्त्वाध्वा एवं कलाध्वा (ये तीन अर्थगत हैं)—इन छह तत्त्वों का गुरु शोधन करते हैं । इस प्रकार शिष्य में आत्मचैतन्य का गुरु नियोजन करे । मन्त्र प्रदान के बाद गुरु तीन (२४.१०२-१०४) श्लोकों से देवी से प्रार्थना करते हैं—

ॐ कारुण्यनिलये देवि सर्वसम्पत्तिसंश्रये ।
शरण्यवत्सले मातः कृपामस्मिन् शिशौ कुरु ॥

क्रियावती दीक्षा के बाद वर्णात्मिका दीक्षा का विधान किया गया है । मातृका वर्ण प्रकृति एवं पुरुष रूप हैं । अतः आचार्य शिष्य के शरीर में मन्त्र के वर्णों को स्थापित करते हैं । शिष्य के शरीर में मन्त्र वर्णों को विलीन कर देने से उसका शरीर देवमय हो जाता है ।

फिर कलावती दीक्षा का विधान किया गया है । निवृत्ति आदि पाँच कलाएँ समस्त भूतों की शक्तियाँ हैं । अतः उन कलाओं को आचार्य शिष्य के पञ्चभूतमय शरीर का भेदन कर उसमें प्रविष्ट करा देते हैं ।

वेधमयी दीक्षा में आचार्य कुण्डलिनी का ध्यान कर शिष्य के सुषुम्ना के मध्य परशिव पर्यन्त षड्दल आदि कमलों में मूलाधार से लेकर आज्ञाचक्र तक वर्णों का वेध करते हैं । इस दिव्य वेध से संयुक्त होकर शिष्य सर्वज्ञ होकर साक्षात् 'शिव' हो जाता है ।

दीक्षा प्राप्त शिष्य को सिद्धि के लिए सदैव सदाचार का पालन करना होता है । अपने समस्त द्रव्य का आधा गुरु को दक्षिणा रूप में प्रदान करे ।

पच्चीसवें पटल में षट्कर्म १. शान्ति, २. वश्य, ३. स्तम्भन, ४. विद्वेष, ५. उच्चाटन एवं ६. मारण—इन कर्मों के लक्षण एवं देवता आदि कहे गए हैं । षट्कर्म आदि का साधन मन्त्र सिद्धि के लिए विशिष्ट ऋतुओं में ही किया जाता है । षट्कर्मों की दिशाएँ भी निश्चित हैं । अतः उन निश्चित दिशाओं में मुख करके जप किया जाता है । शान्ति कार्य के लिए शुक्लपक्ष की बुध युक्त द्वितीया, देवयुक्त तृतीया तथा गुरुयुक्त पञ्चमी ग्राह्य है । हेमन्त ऋतु का वर्ण धवल है और ये अवस्था में वृद्ध हैं । अतः शान्ति कर्म के लिए हेमन्त ऋतु उपयुक्त है । पुष्टि कर्म के लिए गुरुवार प्रशस्त कहा गया है । पद्मासन, स्वस्तिकासन आदि आसनों का षट्कर्मों के लिए विधान किया गया है । शान्त्यादि कर्मों में ग्रथन, विदर्भ आदि छह का विन्यास कहा जाता है । पञ्च महाभूतों के अर्धचन्द्र के समान जल का मण्डल होता है जो कि शान्ति-कर्म में प्रशस्त है । जब चन्द्र (इडा)

नाडी जल या भूमि तत्त्व का उदय हो उस समय शान्ति या पौष्टिक कर्म करना चाहिए । नासिका से वायु का परीक्षण करके षट्कर्म किए जाते हैं । इसी सन्दर्भ में षट्कर्मों की पाश, पद्म आदि छह मुद्राएँ कही गई हैं । चन्द्र वर्णों को छोड़कर भूतलिपियों का (वर्ण) प्रयोग करना चाहिए । जैसे सलिलात्मक वर्णों का प्रयोग शान्तिक, पौष्टिक एवं आकर्षण कर्मों में करना चाहिए । नमः, स्वाहा आदि षट्कर्मों की जातियों का विधान किया गया है । विघ्न विनाश तथा ग्रहकृत दोष के निवारण के लिए 'हुँ फट्' का प्रयोग होता है ।

षट्कर्मों में भूतोदय (स्वरोदय) का विचार आवश्यक है । दोनों नासापुटों से प्राणवायु के सञ्चार से जल-तत्त्व का उदय होता है । इसी समय शान्ति-कर्म करना चाहिए । प्रायः शान्ति-कर्म का काल प्रातः उपयुक्त है ।

षट्कर्म में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न द्रव्यों एवं माला विशेष का कथन है । शुभ कार्य के लिए १०८ मणियों की माला होती है । शान्ति एवं पुष्टि आदि कर्मों में बाँए होकर हवन करना चाहिए । ब्राह्मण भोजन के लिए उनकी संख्या का उल्लेख भी कर्मानुसार किया गया है । चन्दन, गोरोचन आदि द्रव्य तथा दूर्वा या मोर पंख की लेखनी का विधान है । शान्ति कर्म में यन्त्र भोजपत्र पर लिखना चाहिए । अन्त में षट्कर्मों के स्थानों का निर्देश भी किया गया है ।

छब्बीसवें पटल में विभिन्न मुद्राओं का विवेचन है । इसके प्रदर्शन से देवता प्रसन्न होते हैं । एक ही मुष्टी से निर्मित विविधाकार की मुद्राएँ यतः देवों को हर्षित करती हैं । अतः इन्हें मुद्रा कहा जाता है । बिना दीक्षा लिए मुद्रा का निर्माण नहीं करना चाहिए । अदीक्षित साधक यदि मुद्रा का निर्माण करता है तो वह शीघ्र ही दरिद्र हो जाता है ।

अर्चन, जपकाल, ध्यान एवं काम्य कर्मों के समय तत्तत्मुद्रा का प्रयोग होता है; जैसे तीर्थावाहन में अंकुश मुद्रा दिखलाई जाती है और रक्षा कार्य में कुन्त मुद्रा का प्रयोग होता है । इस प्रकार मत्स्य मुद्रा तक बारह मुद्रा के लक्षण कहे गए हैं । फिर देवता के आवाहन में प्रयुक्त होने वाली नौ मुद्राओं का विवेचन है ।

विष्णु की उन्नीस मुद्राएँ, गणेश की सात मुद्राएँ बताकर वाग्भव (ऐं) आदि बीजों की मुद्राओं का कथन है । षोडशोपचार में प्रयुक्त होने वाली धूप, दीप, गन्ध एवं नैवेद्य आदि मुद्राओं का विवेचन है ।

सत्ताइसवें पटल में मुक्तात्मा होने वाली 'योगचर्या' का विधान है । योग के बिना कुण्डली का उत्थान सम्भव नहीं है । कुण्डलिनी के सुप्त रहने से मन्त्र, यन्त्र या यजन कर्म में सिद्धि नहीं होती । अतः साधक को नित्य योगाभ्यास करना चाहिए ।

१. **'मन्त्रयोग'** आभ्यन्तर एवं बाह्य रूप से दो प्रकार का है । आभ्यन्तर योग के अभ्यास के लिए सुषुम्ना, विचित्रा आदि नाडियों का ज्ञान आवश्यक है । इन नाडियों पर विभिन्न देवों का निवास है । मूलाधार में स्वयम्भू लिङ्ग है । यहाँ काम बीज (क्लीं) का निवास है । कामकला बीज ईं, फिर बिन्दु एवं नाद की स्थिति है । सहस्रार के ऊपर स्रवित होने वाली अमृत धारा से षट्चक्र के देवताओं का तर्पण कर योगी साधक जीवन्मुक्त हो जाता है ।

२. कृष्णद्वैपायन व्यास आदि ने लययोग से सिद्धि प्राप्त की थी । नवचक्रों में आत्मा लय ही **लययोग** है ।

३. जब प्राण अपानवृत्ति को खींचकर सुषुम्ना मार्ग से ब्रह्मरन्ध्र (गगनाम्भोज) में वह विराजमान होने लगता है तो उसे **'राजयोग'** कहा जाता है।

४. हठयोग दो प्रकार का है—१. मत्स्येन्द्रनाथ आदि योगियों द्वारा तथा २. मृकण्डु पुत्रादि के द्वारा की गई साधना । हकार का अर्थ सूर्य है और ठकार का अर्थ चन्द्रमा है । जब दोनों ही नाडी समान होती है तब 'हठ' कहा जाता है । यह साधक को मुक्ति प्रदान करती है ।

योग के छह अङ्ग १. आसन, २. प्राणायाम, ३. प्रत्याहार, ४. धारणा, ५. ध्यान और ६. समाधि हैं । इनका वर्णन करके शरीर की स्थिरता के लिए महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डीयान, जालन्धर एवं मूलबन्ध का विवेचन किया गया है। रीढ की हड्डी (= पृष्ठबन्ध) को अत्यन्त कड़ा करने को दण्ड-धारण कहा जाता है । यम, नियम आदि आठ योग के अङ्ग हैं और अहिंसा, सत्य आदि दस 'यम' कहे गए हैं । प्राणायाम की अवस्था चतुष्टय का विवेचन कर प्रत्याहार एवं धारणा को बतलाया गया है । धारणा के पाँच प्रकार हैं । ये पञ्चभूतात्मक हैं । अपने चैतन्य को जागृत रखकर आत्मा में देवता का ध्यान होता है । यह मन को निश्चल कर देता है । इस प्रकार ध्यान योग से साधक निष्कल (मायारहित) हो जाता है और हंस मन्त्र का जप कर योगी परमात्मा में लीन हो जाता है ।

अट्ठाइसवें पटल में योगी की चर्या का विवेचन है । योगी भू आदि सात सूक्ष्म धारणाओं को शिर पर धारण करता है । जिसके फलस्वरूप रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि को त्याग कर शब्द ब्रह्म रूप आकाशतत्त्व में प्रवेश करता है। मानसी धारणा से सूक्ष्म में, सूक्ष्म से बुद्धि में और बुद्धि को भी त्याग कर वह परम पद प्राप्त कर लेता है ।

अन्त में भगवती अरुणा से कल्याण की कामना की गई है ।

हठयोग समीक्षा—'आगमरहस्य' में स्वरोदय का परिज्ञान कर ही षट्कर्म में प्रवृत्त होने की चर्चा की गई है । इसके लिए और शरीर शुद्धि के लिए 'हठयोग'

की मूल अवधारणा का ज्ञान अत्यावश्यक है ।

हठयोग का प्रतिपादन घेरण्डाचार्यकृत घेरण्डसंहिता और हठयोग-प्रदीपिका (आत्मारामकृत) इन दो ग्रन्थों में सविस्तर हुआ है । मत्स्येन्द्रनाथ और गोरक्षनाथ को हठयोग का प्रमुख आचार्य माना गया है । शैव सम्प्रदाय, नाथ सम्प्रदाय एवं बौद्ध योगाचार सम्प्रदाय में हठयोग की साधना पर बल दिया गया है ।

गोरक्षनाथ कृत सिद्धिसिद्धान्त-पद्धति में हठयोग का स्वरूप इस प्रकार बताया गया है—

हकार: कीर्तित: सूर्य: ठकारश्चन्द्र उच्यते ।
सूर्याचन्द्रमसोर्योगाद् हठयोगो निगद्यते ॥

अर्थात् ह = सूर्यनाडी (दाहिनी नासिका) और ठ = चन्द्रनाडी (बाँयीं नासिका) से बहने वाले श्वासवायु के ऐक्य को ही 'हठयोग' कहते हैं । यह क्रिया अत्यन्त कष्टसाध्य कही गयी है ।

पातञ्जल योग शास्त्र के समान हठयोग शास्त्र के भी विशिष्ट परिभाषिक शब्द हैं । यहाँ घेरण्डसंहिता के अनुसार कुछ महत्त्वपूर्ण परिभाषिक शब्दों का विवरण प्रस्तुत हैं, जिससे हठयोग का स्वरूप अंशत: स्पष्ट हो जाएगा ।

शोधनकर्म—१. धौती, २. बस्ति, ३. नेति, ४. नौली, ५. त्राटक और ६. कपालभाति । इन क्रियाओं को शोधनक्रिया या षट्क्रिया कहते हैं ।

धौति—चार प्रकार—अन्तर्धौति, दन्तधौति, हृद्धौति और मूलशोधन ।

अन्तर्धौति—चार प्रकार—वात्यसार, वारिसार, वह्निसार और बहिष्कृत (या प्रक्षालन) ।

दन्तधौति—चार प्रकार—दन्तमूल, जिह्वामूल, कर्णरन्ध्र और कपालरन्ध्र ।

हृद्धौति—तीन प्रकार—दण्ड, वमन और वस्त्र ।

बस्ति—दो प्रकार—जल और शुक्ल ।

कपालभाति—तीन प्रकार—वातक्रम, व्युत्क्रम और शीतक्रम ।

इस प्रकार 'षट्कर्मों' के छह प्रकार में से तीन के तो प्रकार हैं । किन्तु नेति, नौली और त्राटक के प्रकार नहीं है । इन षट् क्रियाओं से घटशुद्धि (अर्थात् शरीर की निर्मलता) होती है और वह सब प्रकार के रोगों से तथा कफ, वात, पित्त के दोषों से मुक्त होता है । जठराग्नि प्रदीप्त होती है ।

आसनों के सम्बन्ध में कहा है कि उनसे शरीर में दृढ़ता आती है । **'आसनानि समस्तानि यावन्तो जीवजन्तव:'** सृष्टि में जितने भी जीवजन्तु हैं,

उनकी शरीरावस्था के अनुसार आसन हो सकते हैं। उनमें चौरासी आसन करने योग्य हैं और उनमें भी अधोलिखित बत्तीस आसन उत्तम माने जाते हैं—

सिद्धं पद्मं तथा भद्रं मुक्तं वज्रं च स्वस्तिकम्।
सिंहं च गोमुखं वीरं धनुरासनमेव च॥
मृतं गुप्तं तथा मत्स्यं मत्स्येन्द्रासनमेव च।
गोरक्षं पश्चिमोत्तानम् उत्कटं सङ्कटं तथा॥
मयूरं कुक्कुटं कूर्मं तथा चोत्तानकूर्मकम्।
उत्तानमण्डुकं वृक्षं मण्डुकं गरुडं वृषम्॥
शलभं मकरम् उष्ट्रं भुजङ्गं योगमासनम्।
द्वात्रिंशदासनानि तु मर्त्ये सिद्धिप्रदानि च॥

इनमें सिद्ध, पद्म, भद्र, मुक्त, वज्र, स्वस्तिक, सिंह, मृत, उग्र, गोरक्ष, मकर और भुजङ्ग इन बारह आसनों के विशेष लाभ बतलाये गए हैं।

१. पद्म, भद्र, स्वस्तिक, सिंह और भुजङ्ग आसन व्याधिनाशक कहे गए हैं। २. मकर और भुजङ्ग आसन देहाग्निवर्धक हैं। ३. पद्म, स्वस्तिक और उग्र आसन मरुत्सिद्धिदायक हैं और ४. सिद्ध, मुक्त, वज्र, उग्र और गोरक्ष आसन सिद्धिदायक बतलाये गए हैं।

मुद्रा—(कुल प्रकार २५) महाभद्र, नभोमुद्रा, उड्डियान बन्ध, जालन्धर बन्ध, मूलबन्ध, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, विपरीतकरणी, योनि, वज्रोलि, शक्तिचालिनी, तडागी, माण्डूकी, शाम्भवी, पार्थिवी-धारणा, आम्भसी-धारणा, आग्नेयी-धारणा, वायवी-धारणा, आकाशी-धारणा, आश्विनी, पाशिनी, काकी, मातंगिनी और भुजंगिनी।

सुप्त कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत् करने के हेतु मुद्राओं की साधना आवश्यक मानी गई है।

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्रबोधयितुमीश्वरीम्।
ब्रह्मरन्ध्रमुखे सुप्तां मुद्राभ्यासं समाचरेत्॥

हठयोग में कुण्डलिनी शक्ति का उत्थापन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है। किं बहुना कुण्डलिनी का उत्थापन ही इस योग का उद्दिष्ट प्रयोजन है। कुण्डलिनी के उत्थान से सर्व सिद्धियों की प्राप्ति और व्याधि तथा मृत्यु का विनाश होता है।

'प्रत्याहार' से धीरता की प्राप्ति होती है। चञ्चल स्वभाव के कारण बाहर भटकने वाले मन को आत्माभिमुख करना ही 'प्रत्याहार' कहलाता है।

प्राणायाम से लाघव प्राप्त होता है। वर्षा और ग्रीष्म ऋतु में प्राणायाम नहीं

करना चाहिए तथा उसका प्रारम्भ नाडीशुद्धि होने पर ही करना चाहिये। नाडीशुद्धि के लिये समनु प्राणायाम आवश्यक होते हैं। समनु के तीन प्रकार होते हैं—निर्मनु, वातसार धौति का अपर नाम है। प्राणायाम में कुम्भक क्रिया का विशेष महत्त्व होता है। कुम्भक के आठ प्रकार—

सहितः सूर्यभेदश्च उज्जयी शीतली तथा।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा केवली चाष्टकुम्भकाः॥
खेचरत्वं रोगनाशः शक्तिबोधस्तथोन्मनी।
आनन्दो जायते चित्ते प्राणायामी सुखी भवेत्॥

प्राणायाम की सिद्धता के तीन लक्षण होते हैं। प्रथम लक्षण शरीर पर पसीना आना। द्वितीय लक्षण—मेरुकम्प और तृतीय लक्षण है भूमित्याग अर्थात् शरीर का भूमि से ऊपर उठना। यह प्राणायाम की उत्तम सिद्धता का लक्षण है।

खेचरत्व, रोगनाश, शक्तिबोध तथा उन्मनी से चित्त में आनन्द होता है। यह प्राणायम की फलश्रुति है।

इस शास्त्र में शरीरस्थ वायु के दस प्रकार—'स्थान और क्रिया' भेद से माने जाते हैं।

हृदयस्थान में प्राण। गुद्स्थान में अपान। नाभिस्थान में समान। कण्ठस्थान में उदान। व्यान सर्व शरीर में व्याप्त होता है। इन पाँच वायुओं के अतिरिक्त, नाग = चैतन्यदायक, कूर्म = निमेषणकारक, कृकल = क्षुधातृषाकारक, देवदत्त = जृम्भा (जम्भई) कारक और धनञ्जय = शब्दकारक होता है।

ध्यान का फल है 'आत्मसाक्षात्कार'। ध्यान के तीन प्रकार (१) स्थूल-ध्यान—हृदयस्थान में इष्ट देवता की मूर्त्ति का ध्यान। (२) ज्योतिर्मयध्यान—इसके दो प्रकार होते हैं। (अ) मूलाधारचक्र के स्थान में प्रदीपकलिकाकृति ब्रह्म-ध्यान, (आ) भ्रूमध्यस्थान में ज्वालावलीयुक्त प्रणवाकार का ध्यान। (३) सूक्ष्म-ध्यान—शाम्भवी मुद्रा के साथ नेत्ररन्ध्र में राजमार्गस्थान पर विहार करती हुई कुण्डलिनी का ध्यान। हठयोग के शास्त्रकार सूक्ष्मध्यान का सर्वोत्कृष्ट महत्त्व बतलाते हैं।

राजयोग के समान ही हठयोग का भी अन्तिम अङ्ग 'समाधि' है। **'घटात् भिन्नं मनः कृत्वा ऐक्यं कुर्यात् परात्मनि।'** अर्थात् मन को शरीर से पृथक् कर परमात्मा में स्थिर रखना यह समाधि का एक अभ्यास है, तथा **'सच्चिदानन्द-रूपोऽहम्'** यह धारणा रखना दूसरा अभ्यास है। हठयोग की षडङ्ग साधना की परिणति समाधि की साधना में होती है। घेरण्डसंहिता के अनुसार शाम्भवी, खेचरी, भ्रामरी और योनिमुद्रा की तथा स्थूलध्यान की साधना से समाधि सुख का

लाभ साधक को होता है ।

शाम्भवीमुद्रा में 'ध्यानयोग समाधि' की साधना से दिव्य रूपदर्शन का आनन्द मिलता है । **खेचरी मुद्रा** में 'नादयोग समाधि' की साधना से दिव्य शब्द के श्रवण का आनन्द मिलता है । **योनिमुद्रा** में 'लययोग समाधि' की साधना से दिव्य स्पर्शानन्द का अनुभव आता है। इस प्रकार दिव्य शब्द स्पर्शादि के अनुभव को समाधि सुख कहा है। इनके अतिरिक्त भक्तियोगसमाधि **(स्वकीये हृदये ध्यायेद् इष्टदेवस्वरूपकम्)** और राजयोगसमाधि **(मूर्च्छाकुम्भकेन भ्रुवोरन्तरे आत्मनि मनसो लयः)** मिलाकर समाधि के छह प्रकार माने जाते हैं । हठयोग की सम्पूर्ण साधना किसी अधिकारी मार्गदर्शक गुरु के आदेशानुसार ही करना आवश्यक है, अन्यथा विपरीत परिणाम हो सकते हैं । अर्थात् शरीर शुद्ध न होकर मृत्यु भी सम्भव है ।

आगमरहस्य के उद्देश्य—जो मनुष्य अच्छा या बुरा काम्य कर्म करता है मन्त्र उसका शत्रु बन जाता है । इसलिये काम्य कर्म में प्रवृत्त नहीं होना चाहिये ।

तन्त्रों में यह षट्कर्म विषयासक्त चित्त वालों के लिये प्रकाशित किया गया है जो प्रथम पूर्वाचार्यों द्वारा भी कहा गया है । किन्तु काम्य कर्म कदापि शुभावह नहीं होता । काम्य कर्म में प्रसक्त होने वाले साधकों को केवल उतना ही फल प्राप्त होता है । किन्तु निष्काम देव पूजा कर्म करने वाले को समस्त अभीष्ट प्राप्त हो जाते हैं ।

तन्त्रकार ने प्रत्येक मन्त्र के प्रयोगों को सुखाप्ति के लिये कहा है । किन्तु उत्तम साधक को उस आसक्ति का त्याग कर निष्काम दृष्टि से देवता का स्मरण करना चाहिये । वेद में कर्म, उपासना और ज्ञान तीन काण्ड कहे गये हैं । जिसमें दो काण्ड साधन कहे गये हैं । तीसरा ज्ञानकाण्ड साध्य है । इसलिये वैदिक रीति से शुद्ध अन्तःकरण से देवता की कर्म और उपासना रूप दो साधन करे । ऐसा करने से उत्तम ज्ञान रूप साध्य अवश्य प्राप्त हो जायेगा ।

यह चेतनात्मक जीव कार्य कारण सङ्घात रूप शरीर में प्रविष्ट हो गया है । वह सम्पूर्ण ब्रह्म ही है । इस प्रकार मन्त्रज्ञ साधक ज्ञान प्राप्त कर जीवन्मुक्त हो जाता है । मनुष्य देह प्राप्त कर जो देवता की उपासना कर संसार से मुक्त नहीं होता, वह महापापी है । इसलिये उत्तम मनुष्यों के लिये और आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिये, सत्कर्म से देवता की उपासना द्वारा कामादि शत्रुओं का नाशपूर्वक सतत यत्न करते रहना चाहिये ।

यहाँ तक ग्रन्थ में आये हुए विषयों का विवेचन किया गया; अब **तान्त्रिक सिद्धि** के विषय में एक **सत्य घटना** का वर्णन प्रस्तुत है—

विषयानुक्रमणिका

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

श्रीरघुनाथतर्कवागीशप्रणीतः

आगमतत्त्वविलासः

भाषाभाष्यसंवलितः

[प्रथमो भागः]

भाषाभाष्यकारः

श्री एस० एन० खण्डेलवाल

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

विषयानुक्रमणिका

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
505

श्रीरघुनाथतर्कवागीशप्रणीतः

आगमतत्त्वविलासः

भाषाभाष्यसंवलितः

[द्वितीयो भागः]

भाषाभाष्यकारः
श्री एस० एन० खण्डेलवाल

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

विषयानुक्रमः

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला

505

श्रीरघुनाथतर्कवागीशप्रणीतः

आगमतत्त्वविलासः

भाषाभाष्यसंवलितः

[तृतीयो भागः]

भाषाभाष्यकारः
श्री एस० एन० खण्डेलवाल

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

विषयानुक्रमणी

महावीर मन्दिर प्रकाशन माला का 25वाँ पुष्प

अगस्त्य-संहिता

रामोपासना का प्राचीनतम वैष्णवागमशास्त्रीय ग्रन्थ

सम्पादक

पं. भवनाथ झा

आमुख लेखन

आचार्य किशोर कुणाल

महावीर मन्दिर प्रकाशन

विषयसूची

परिशिष्ट :

***

अग्निपुराणम्

विषयानुक्रमणिका

भविष्य महापुराणम्

(प्रथम खण्ड)

ब्राह्मपर्व

(हिन्दी-अनुवाद सहित)

अनुवादक

पण्डित बाबूराम उपाध्याय

शक १९३४ : सन् २०१२

हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग

प्रकाशक

विभूति मिश्र

प्रधानमंत्री

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद-३

प्रकाशन वर्ष	:	शक १९३४ : सन् २०१२
संस्करण	:	द्वितीय
प्रतियाँ	:	११००
स्वत्वाधिकार	:	हिन्दी साहित्य सम्मेलन
मूल्य	:	५००/- रुपये

मुद्रक

सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

अनुक्रमणिका

भविष्य महापुराणम्

(द्वितीय खण्ड)

मध्यम एवं प्रतिसर्गपर्व

(हिन्दी—अनुवाद सहित)

अनुवादक :

पण्डित बाबूराम उपाध्याय

शक १९२८ : सन् २००६

हिन्दी साहित्य सम्मेलन • प्रयाग

१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद

विषय-अनुक्रमणिका

मध्यमपर्व - प्रथम भाग

मध्यमपर्व - द्वितीय भाग

मध्यमपर्व - तृतीय भाग

प्रतिसर्गपर्व - प्रथम खण्ड

प्रतिसर्गपर्व - द्वितीय खण्ड

प्रतिसर्गपर्व - तृतीय खण्ड

प्रतिसर्गपर्व - चतुर्थ खण्ड

★★

भविष्य महापुराणम्

(तृतीय खण्ड)

(हिन्दी अनुवाद सहित)

अनुवादक
पंडित बाबूराम उपाध्याय

शक : २०२५ **सन् : २००३**

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

१२, सम्मेलन मार्ग, इलाहाबाद

विषयानुक्रमणिका

उत्तर-पर्व

।। श्रीः ।।

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
२७८

भूतडामरतन्त्रम्

हिन्दीव्याख्योपेतम्

हिन्दीव्याख्याकार

एस० एन० खण्डेलवाल

सम्पादक

डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी

साहित्य-आयुर्वेद-ज्योतिष-आचार्य

एम. ए., पी-एच्. डी., डी. एस-सी. ए-वाइ.

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वा रा ण सी

विषय-सूची

चौखम्बा संस्कृत सीरीज
१६२
****

कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्

ब्रह्मपुराणम्

मूल तथा भाषानुवाद

भाषाभाष्यकार
एस. एन. खण्डेलवाल
(श्री नाथ खण्डेलवाल)

पूर्वभागः

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
वाराणसी

विषयानुक्रमणिका

❖❖❖

चौखम्बा संस्कृत सीरीज

१६२

****

कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्

ब्रह्मपुराणम्

मूल तथा भाषानुवाद

भाषाभाष्यकार

एस. एन. खण्डेलवाल

(श्री नाथ खण्डेलवाल)

उत्तर भागः

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

वाराणसी

विषयानुक्रमणिका

चौखम्बा संस्कृत सीरीज
१५३
****

कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्

ब्रह्माण्डमहापुराणम्

'निर्मला' हिन्दी व्याख्या, वैज्ञानिक विमर्श एवं श्लोकानुक्रमणिका सहित

सम्पादक एवं अनुवादक
प्रो. दलवीर सिंह चौहान
एम. ए., पी-एच.डी. (पुराणेतिहासाचार्य)
भू. पू. अध्यक्ष : संस्कृत विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

पूर्वार्द्धम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
वाराणसी

ब्रह्माण्डपुराण के वर्ण्यविषय

पूर्वभाग में प्रक्रियापाद

१. कृत्यसमुद्देश—पुराणानुक्रमणिका, इसमें पुराण का अवतरण, रोमहर्षण का कुरुक्षेत्र में होना। ऋषियों का कुरुक्षेत्र में एकत्रित होना भाग और फिर उनका रोमहर्षण के ब्रह्माण्ड पुराण के वर्ण्यविषय का पूछना और फिर ब्रह्माण्ड पुराण के समस्त अध्यायों के विषयों का क्रमशः वर्णन।

२. नैमिषाख्यान कथन—नैमिषारण्य का वर्णन, राजा पुरुरवा की कहानी, ऋषियों के हाथों उसका विनाश।

३. हिरण्यगर्भोत्पत्ति वर्णन—संसार की रचना, जल से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति, प्रकृति पुरुष विवेचन।

४. लोक की कल्पना—ब्रह्माण्ड के जीवन की स्थितियाँ- सत्त्व, रजस् और तमस् के गुण और विष्णु तथा अन्य देवों की प्रकृति, कल्प का वर्णन एवं कल्पयुग व्याख्या।

५. लोककल्पन—विष्णु का अवतार वर्णन और पृथ्वी का उद्धार वर्णन, देवों, ऋषियों और मनुष्यों की उत्पत्ति और उनका विनाश (अन्त)।

पूर्वभाग अनुषंग पाद

६. कल्प मन्वन्तर व्याख्यान वर्णन—देवों की उपस्थिति एवं घटना, देवों ऋषियों और मनुष्यों की उत्पत्ति।

७. लोकज्ञान वर्णन—पृथ्वी का विभाग, चार युग, कल्प और मन्वन्तर वर्णन, सतयुग, त्रेता, द्वापर आदि चार युगों का वर्णन, पृथ्वी का भूगोल, वनस्पति और प्राणियों की उत्पत्ति, चार धर्म और उनके कर्त्तव्य।

८. मानव सृष्टि वर्णन—देवादि सृष्टिकथन, देवों, ऋषियों और मानवों की उत्पत्ति।

९. रुद्र की उत्पत्ति वर्णन—ब्रह्म, रुद्र और अन्य देवों की उत्पत्ति, भृगु, अंगिरा और मनु के द्वारा मनुष्यों की उत्पत्ति, रुद्र के द्वारा भूत और पिशाचों की उत्पत्ति।

१०. महादेव विभूति वर्णन—रुद्र की उत्पत्ति, नीललोहित की उत्पत्ति, उनके आठ नाम और आठ आकृतियाँ।

११. ऋषिवंश वर्णन—भृगु, अंगिरा, मरीचि और पुलस्त्य की उत्पत्ति।

१२. अग्निवंश वर्णन—अग्नि की उत्पत्ति, उसकी सन्तान और १० प्रकार की अग्नियों का वर्णन।

१३. काल सद्भाव—ऋतुओं की उत्पत्ति, दक्ष की सन्तानें तथा दक्ष यज्ञ में उनकी पुत्री सती जो शंकर की पत्नी थीं, जिनको यज्ञ में न बुलाने पर शंकर के अपमान के कारण दक्ष यज्ञ का विध्वंस।

१४. प्रियव्रतवंश वर्णन—स्वायम्भुव प्रियव्रत और उनकी संतानों का वर्णन।

१५. पृथिवी के आकार के विस्तार—जम्बूद्वीप का वर्णन, उसके विभाग, देशों और पर्वतों का वर्णन।

१६. भारतवर्ष वर्णन—भारत के विभाग, इसके निवासी तथा पर्वत।

१७. किंपुरुष आदि देश वर्णन—इलावृत वर्ष और हरिवर्ष वर्णन।

१८. जम्बूद्वीप वर्णन—कैलास से गंगा की उत्पत्ति, गंगा का चार दिशाओं में चार नदियों के रूप में बहना।

१९. प्लक्षद्वीप वर्णन—प्लक्षद्वीप का वर्णन तथा अन्य शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक और पुष्कर द्वीपों का वर्णन।

२०. अधोलोक वर्णन—अधोलोक वर्णन—नाग और राक्षसों का वर्णन।

पौराणिक नक्षत्र विज्ञान

२१. आदित्य व्यूह वर्णन—पृथ्वी की स्थिति, सूर्य, चन्द्र और उनकी गति समयविभाजन और खगोलीय नक्षत्रों की गति।

२२. देवग्रहों का वर्णन—नक्षत्र, तारों की गति, मेघों की उत्पत्ति, सूर्यरथ का वर्णन।

२३. ध्रुवचर्या का वर्णन—भिन्न देवों का व्यवसाय, महीनों के देवता, छः ऋतुएँ, ध्रुव के चारों ओर ग्रह-नक्षत्रों का घूमना।

२४. ज्योतिष सन्निवेशन—सूर्य प्रकाश का स्रोत तथा अन्य ग्रह नक्षत्रों का प्रकाशक, ऋतुओं का कारण तथा वनस्पतियों को पैदा करने वाला।

२५. नीलकण्ठ नाम की उत्पत्ति—क्षीरसागर के मन्थन में निकले हुए कालकूट विष को पीने से शंकर के कण्ठ का नीला हो जाना।

२६. लिङ्ग की उत्पत्ति कथन—शिव के लिङ्ग की उत्पत्ति, विष्णु के द्वारा शिव का आदिशास्त्र।

२७. दारुवन प्रवेश वर्णन—शिव का नग्न अवस्था में ऋषियों के बीच जाना और लिङ्ग का प्रदर्शन करना, ऋषियों द्वारा शिव को शाप देना, बाद में ऋषियों द्वारा उनके महत्त्व एवं भस्म रमाने के महत्त्व को समझना।

२८. अमावस्या श्राद्ध में पितरों का परिचय—अमावस्या श्राद्ध में पितृविचय।

२९. संख्या वालों का वर्णन—युगचक्र और उसकी अवधि।

३०. यज्ञ प्रवर्तन वर्णन—यज्ञ प्रवर्तनम्। यज्ञों के नाम तथा फल वर्णन।

३१. चतुर्युगों का वर्णन—चार युगों का वर्णन, चार वर्ण और युगों की प्रकृति।

३२. युग प्रजा लक्षण ऋषिप्रवर वर्णन—विभिन्न युग में मनुष्यों और पशुओं के लक्षण, मन्वन्तरों का कालमान, चारों युगों में शिष्ट और अशिष्ट मनुष्यों के शुभ और अशुभ कार्य। शुभ कर्मों का प्रभाव। चारों आश्रमों के कर्तव्य। चारों यगों में ऋषियों की स्थिति और उनकी सन्तानों का वर्णन।

३३. ऋषिणलक्षण वर्णन—मुख्य-मुख्य ऋषियों और उनके शिष्यों एवं पुत्रों का परिचय। ऋषि जिन्होंने वैदिक मन्त्रों का प्रणयन किया। वैदिक मन्त्रो के विभागों का वर्णन।

३४. व्यासशिष्यों की उत्पत्ति वर्णन—महर्षि वेदव्यास द्वारा वेदों और पुराणों की रचना करना तथा द्वापर युग में उनकी शिष्य-परम्परा। महर्षि याज्ञवल्क्य और महर्षि शाकल्य के बीच राजा जनक के अश्वमेध यज्ञ की सभा में शास्त्रार्थ और शाकल्य की पराजय।

३५. वेदव्यासाख्यान स्वायंभुवमन्वतर वर्णन—महर्षि शाकल्य द्वारा वेद की शाखाओं का वर्णन, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद की शाखाओं और उनकी संहिताओं के रचयिता ऋषियों का वर्णन, ब्राह्मण, आरण्यक और निरुक्त साहित्य का परिचय, याज्ञवल्क्य और वैशम्पायन की कहानी, ऋषि वंश परम्परा तथा ऋषियों की संख्या, वैवस्वत मनु का परिचय, मनुष्य की सृष्टि और फिर आगे मन्वन्तरों का वर्णन, मन्वन्तरों का काल परिचय। भिन्न-भिन्न मन्वन्तरों में देवता, पितर, ऋषियों, मनुष्यों और राक्षसों का वर्णन।

३६. शेष मन्वन्तर वर्णन—शेष मन्वन्तराख्यान और पृथ्वी दोहन, शेष बीते हुए मन्वन्तरों का वर्णन, स्वारोचिष उत्तम तामस रैवत चाक्षुष मन्वन्तरों में मनुष्यों की सृष्टि और उसके मन्वन्तरों का कालमान। उसके बाद स्वारोचिष मन्वन्तर में राजा वेन का परिचय, राजा वेन से आदि राजा पृथु की उत्पत्ति तथा पृथु द्वारा पृथ्वी का दोहन वर्णन, फिर भिन्न-भिन्न कालों में भिन्न-भिन्न देवों, राक्षसों और मनुष्यों द्वारा पृथ्वी दोहन का वर्णन।

३७. पृथुवंशानुकीर्तन चाक्षुषसर्ग वर्णन—पृथ्वी के भिन्न-भिन्न नामों की सार्थकता, राजा पृथु के वंश का वर्णन, दक्ष का जन्म, चाक्षुष मन्वन्तर वर्णन।

३८. वैवस्वत मन्वन्तर वर्णन—वैवंस्वत मन्वन्तर, मरीचि ऋषि की उत्पत्ति, वैवस्वत मन्वन्तर के राजाओं का परिचय।

२. मध्य भाग

१. ऋषिसर्ग वर्णन—सप्तर्षियों की उत्पत्ति, प्रत्येक मन्वन्तर में इन्हीं सप्तर्षियों की स्थिति का वर्णन, भृगु और अंगिरा ऋषि की उत्पत्ति का वर्णन।

२. प्रजाप्रतिवंश वर्णन—प्रजापति दक्ष और उनकी सन्तानों का वर्णन, प्रजापति दक्ष द्वारा ऋषि, देवता, गन्धर्व, मनुष्य, सर्प, राक्षस, यक्ष, भूत, पिशाच, पक्षी, पशु, मृगादि की मानस उत्पत्ति, नारद की उत्पत्ति।

३. स्वयंभू त्रैगुण्यस्वरूप वर्णन—वैवस्वत मन्वन्तर में देवों, दानवों, मनुष्यों की विस्तार से उत्पत्ति, धर्म निसर्ग वर्णन, नरनारायण, अग्नि, वायु आदि की उत्पत्ति, मुहूर्तों एवं नक्षत्रों की उत्पत्ति, कश्यप की सन्तानों का वर्णन, देवताओं और ऋषियों की उत्पत्ति।

४. जय अभिव्याहार—प्रजासर्ग की इच्छा से ब्रह्मा द्वारा मुख से जय देवताओं की उत्पत्ति उनके द्वारा सन्तान उत्पत्ति न करने के कारण ब्रह्मा द्वारा शाप देना, उसके बाद शाप की वापसी।

५. मरुद्गण की उत्पत्ति वर्णन—दैत्य, दानव, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, भूत, पिशाच, वसु, पशु-पक्षी और वृक्ष-लताओं की उत्पत्ति का विस्तार से वर्णन, कश्यप पत्नी दिति से हिरण्यकशिपु की उत्पत्ति, उसके अत्याचारों से संसार में हाहाकार, फिर विष्णु द्वारा उसका संहार, दिति और कश्यप से राहु का एवं मरुद्गणों का जन्म।

६. दनुवंश कीर्तन—दनु और सिंहिका से महाबली राक्षसों की उत्पत्ति।

७. काश्यपेय वर्णन—गन्धर्व और अप्सराओं के पुत्र मौनेयों की वंशावली, कद्रु की सन्तानों का वर्णन, खश की वंशावली, यक्ष और राक्षसों का दैत्यों के साथ विवाह सम्बन्ध और उनसे वंशोत्पत्ति, यक्ष की वंशावली, गुह्यक और अप्सराओं की वंशावली, गरुड़, सिंह शरभ, गौ आदि की उत्पत्ति, वानर वंश का वर्णन, बाली, सुग्रीव की कहानी, रावण को बाली द्वारा पराजित करना, सूर्य का मार्तण्ड कहा जाना, हाथी आदि की स्थिति, भूत और पिशाचों की जातियाँ तथा उनका निवास स्थान, जंगली और पालतू (घरेलू) जानवरों चिड़ियों और सूक्ष्म कीटों, मच्छरों तक की उत्पत्ति कथा।

८. ऋषिवंश वर्णन—महर्षि कश्यप द्वारा अपनी सन्तानों का राज्याभिषेक कर यथास्थान उन्हें नियुक्त करना, उसके बाद अत्रि और वशिष्ठ की वंशावली।

९. पितृकल्प वर्णन—हिमालय से उमा (पार्वती) गंगा आदि की उत्पत्ति का वर्णन, मानवों के लिए श्राद्ध का महत्त्व, श्राद्ध की विधि का वर्णन, देवपितृगण विवेचन, देवों और पितरों की स्थिति, श्राद्ध में दान की महिमा, दान के पात्र।

१०. पितृ पितरों के राज्यकल्प—जय नामक पितरों में सात गणों से संसार की सृष्टि का वर्णन, हिमवान् और मेना से उमा की उत्पत्ति, उमा और शंकर से स्कन्द की उत्पत्ति की कथा, जिसमें अग्नि द्वारा वीर्य वहन करने और फिर गंगा को गर्भ देने और कृत्तिकाओं द्वारा पालन करने से कार्तिकेय की जीवन कथा। अच्छोदा नामक नदी सत्यवती और पीवरी की कहानी, श्राद्ध के लाभ।

११. श्राद्धकल्प में समिधा वर्णन—श्राद्ध में देय वस्तुओं के दान का फल वर्णन, श्राद्ध में श्रेष्ठ वस्तुओं

के नाम तथा उनके फल, श्राद्ध एवं बलिकर्म विधि, श्राद्ध और बलि कर्म में देय एवं त्याज्य वस्तुओं का विवेचन एवं श्राद्ध महिमा वर्णन तथा श्राद्धफल विवेचन।

१२. श्राद्धकल्प—सर्व श्राद्ध कर्म में सबसे पहले और आगे रहने वाले विश्वेदेव की उत्पत्ति और उनका प्रायश्चित्त वर्णन, पितरों के लिए पिण्डदान और ब्राह्मणों को भोजन कराने के फल।

१३. श्राद्धकल्प में पुण्य देशों का वर्णन—श्राद्ध करने के योग्य तीर्थ, नदियाँ, पर्वतादि का वर्णन तथा उन-उन तीर्थ स्थलों में पिण्डदान करने के भिन्न-भिन्न फल। अन्नदान, गुरु तथा ध्यान योग की महिमा।

१४. श्राद्ध में शौचविधि वर्णन—श्राद्ध करने का समय, श्राद्ध में प्रयोज्य वस्तुओं तथा वर्ज्य वस्तुओं का वर्णन, श्राद्ध के पात्र, श्राद्ध करने हेतु पवित्र होने की विधि, अशौच निवारण।

१५. श्राद्धकल्प में ब्राह्मणपरीक्षा वर्णन—श्राद्ध कर्म में दान देने अथवा भोजन कराने योग्य ब्राह्मणों की परीक्षा। विद्वान् एवं मूर्ख ब्राह्मण को दान देने का फलाफल वर्णन।

१६. श्राद्धकल्प में दान की प्रशंसा का वर्णन—श्राद्ध में भिन्न-भिन्न वस्तुओं को दान करने से भिन्न-भिन्न फलों की प्राप्ति का वर्णन।

१७. श्राद्धकल्प में नक्षत्र तिथि श्राद्ध का फल—श्राद्ध के लिए समुचित समय का विवेचन तथा कुछ निश्चित दिन एवं तिथियों में श्राद्ध करने से लाभ का वर्णन।

१८. नक्षत्रों में श्राद्ध करने के फल का वर्णन—श्राद्धकर्म में कौन-कौन नक्षत्र श्रेष्ठ हैं तथा उनमें श्राद्ध करने का फल वर्णन।

१९. श्राद्धकल्प में ब्राह्मणों की परीक्षा—श्राद्ध में भिन्न-भिन्न भोज्य पदार्थों का भोजन कराने का महत्त्व। श्राद्ध में आमन्त्रित करने योग्य अथवा न करने योग्य मनुष्यों का वर्णन, पंक्तिपावन परिचय।

२०. श्राद्धकल्पवर्णन—पितृगण, पितरों के सात समूहों का वर्णन, पिण्डदान की महिमा।

२१. परशुरामकथारम्भ—परशुराम की कहानी, ऋचीक ऋषि के पुत्र जमदग्नि के पुत्र परशुराम महर्षि और्व द्वारा भगवान् शिव की आराधना कर अस्त्र प्राप्त करने हेतु परशुराम से कटना।

२२. परशुराम की तपस्या का वर्णन—परशुराम द्वारा हिमालय पर तपस्या हेतु गमन, हिमालय पर वृक्षों, नदियों और सरोवरों का वर्णन, यहाँ परशुराम द्वारा घोर तप करना और योग की अन्तिम अवस्था समाधि में लीन होना।

२३. परशुराम शंकर संवाद—परशुराम की तपस्या देखने हेतु ऋषियों का आगमन, महर्षि भगवान् परशुराम द्वारा शिव को प्रसन्न करना, परशुराम की परीक्षा के लिए व्याध का अत्यन्त भयंकर वेष धारण कर भगवान् शिव का परशुराम के समक्ष उपस्थित होना, परशुराम शिव का संवाद।

२४. शिव द्वारा परशुराम को आयुध देना—परशुराम द्वारा व्याध वेषधारी भगवान् शिव को पहचानना और उनके चरणों में नतमस्तक होकर उनकी स्तुति करना, फिर शिव द्वारा परशुराम को आयुध प्रदान करना और परशुराम द्वारा देवों के शत्रुओं के संहार हेतु प्रस्थान तथा जहाँ पर व्याध वेषधारी शंकर उपस्थित हुए थे, वहीं पर उनकी मूर्ति स्थापित करना।

२५. परशुराम द्वारा शिव की स्तुति और ब्राह्मण बालक की रक्षा—परशुराम द्वारा भगवान् शिव की स्तुति करना, फिर वहाँ से चल देना, मार्ग में एक सिंह और भेड़िये से आक्रान्त ब्राह्मण बालक का मिलना और परशुराम द्वारा उसकी रक्षा करना और फिर उसे अपना प्रिय मित्र बनाकर साथ लेकर अपने पिता के आश्रम में पहुँचना।

२६. जमदग्नि के आश्रम में कार्तवीर्य का आना—हैहयवंशीय राजा कार्तवीर्य अर्जुन का ससैन्य शिकार के लिए प्रस्थान, उसके बाद जमदग्नि के आश्रम में आगमन, वहाँ कामधेनु के प्रभाव से उनका भव्य स्वागत।

२७. कार्तवीर्य अर्जुन का जमदग्नि द्वारा किया गया अतिथि सत्कार—महर्षि जमदग्नि द्वारा कामधेनु के प्रभाव से समस्त सुविधाओं से युक्त नगर का बसाना और सभी प्रकार के संसाधनों वाले राजभवन तथा अनेकों दिव्य भवनों का निर्माण करा देना, जहाँ राजा कार्तवीर्य का ससैन्य पूर्ण आनन्द के साथ रात्रिविश्राम करना।

२८. कार्तवीर्य के मन्त्री द्वारा गोहरण समारम्भ—कार्तवीर्य के मन्त्री चन्द्रगुप्त द्वारा राजा कार्तवीर्य को जमदग्नि की कामधेनु गाय को प्राप्त करने के लिए कहना, ब्राह्मण मन्त्री द्वारा गोहरण करने को मना करना, परन्तु मन्त्री द्वारा राजा का अधिकार बताकर कार्तवीर्य को गोहरण के लिए तत्पर करना और फिर सैनिकों को लेकर सेनापति द्वारा गो ग्रहण करने जाना।

२९. जमदग्नि हनन—गो ग्रहण में जमदग्नि द्वारा गाय के कण्ठ को पकड़ कर लटकना और फिर सैनिकों द्वारा जमदग्नि का वध करना, कामधेनु का स्वर्ग को चला जाना। यह देख कार्तवीर्य का चिन्तित हो जाना।

३०. जमदग्नि का पुनः जीवित होना—जमदग्नि के मरने पर उनकी पत्नी रेणुका का करुण क्रन्दन, वन से घूम कर लौटे परशुराम का उनको समझाना, फिर रेणुका द्वारा पति के साथ शरीर को भस्म कर देने का निश्चय करना, उन्हें अग्निदाह से रोकने की भविष्यवाणी होना, उसके बाद महर्षि भृगु का उस आश्रम में आकर जमदग्नि को जीवित करना, फिर परशुराम द्वारा २१ बार क्षत्रियों के संहार की प्रतिज्ञा करना।

३१. भृगु का परशुराम को उपदेश—जमदग्नि के जीवित होने पर अपने पितामह भृगु का स्वागत करना और वध का समस्त वृत्तान्त बता देना, वहीं पर परशुराम द्वारा अपनी प्रतिज्ञा बताना, भृगु द्वारा क्षत्रिय संहार की प्रतिज्ञा को कठिन बताते हुए परशुराम को भगवान् शंकर की तपस्या कर त्रैलोक्य कवच को प्राप्त करने का परामर्श देना।

३२. परशुराम का तपस्या द्वारा शिव को प्रसन्न करना—परशुराम अपनी तपस्या से शिव को प्रसन्न कर उनसे त्रैलोक्य कवच को प्राप्त करते हैं और शक्तिशाली पाशुपतास्त्र को भी प्राप्त करते हैं और फिर पुष्कर द्वीप को चले जाते हैं।

३३. त्रैलोक्य कवच वर्णन—त्रैलोक्य कवच मन्त्र तथा उसकी प्रयोगविधि, श्रीकृष्ण की उपासना।

३४. मृगमृगी संवाद—पुष्कर तीर्थ में परशुराम द्वारा स्नान करते समय मृगमृगी के संवाद में अपनी प्रतिज्ञा की कहानी को सुनना, उसके बाद मृगमृगी मिथुन द्वारा अगस्त्य के आश्रम पर भगवान् श्रीकृष्ण के प्रेमामृत स्तोत्र कथा के महत्त्व के विषय में जानना।

३५. मृग और मृगी की कथा, परशुराम का अगस्त्याश्रम में जाना—मृगमृगी मिथुन के पूर्वजन्म की कहानी सुनना, फिर परशुराम द्वारा अगस्त्य मुनि के आश्रम का पुनरुद्धार करना, तथा वहीं पर मृगमृगी का पहुँचना।

३६. अगस्त्य द्वारा कृष प्रेमामृत स्तोत्र का कथन—परशुराम द्वारा कृष्ण प्रेम से सम्बन्धित कहानी को सुनना, वहीं पर मृगमिथुन का शरीर त्याग करना।

३७. परशुराम को कृष्ण का वरदान—परशुराम द्वारा अपनी समस्त बीती हुई घटना को सुनाना और फिर कृष्ण द्वारा उन्हें पृथ्वी पर के समस्त क्षत्रियों के विनाश का वरदान देना।

३८. कार्तवीर्य अर्जुन के साथ परशुराम युद्ध, राजा मत्स्य का वध—परशुराम का कार्तवीर्य की राजधानी महिष्मती में प्रस्थान करना और कार्तवीर्य को युद्ध के लिए ललकारना तथा कार्तवीर्य द्वारा भेजे गये राजा मत्स्य के साथ परशुराम का घोर संग्राम तथा महाराज मत्स्य का युद्ध में वीरगति को प्राप्त होना।

३९. परशुरामकृत भद्रकाली स्तुति—परशुराम द्वारा अनेकों क्षत्रिय राजाओं का मारा जाना, परन्तु राजा सुचन्द्र को मारने के लिए असमर्थ होकर भद्रकाली देवी की स्तुति करना, भद्रकाली द्वारा उन्हें अग्निबाण प्रदत्त करना और उसकी प्रयोग विधि बताना और फिर उस अग्न्यस्त्र द्वारा राजा सुचन्द्र का वध करना।

४०. कार्तवीर्य अर्जुन वध—परशुराम द्वारा अनेकों राजाओं के वध के बाद कार्तवीर्य के साथ घोर युद्ध और उस युद्ध में कार्तवीर्य का वध करना।

४१. परशुराम का कैलास जाना—कार्तवीर्य के समस्त पुत्रों का वध करने के बाद परशुराम का भगवान् शंकर के पास कैलास पर्वत पर जाना और वहाँ पर गणेश द्वारा उनको जाने की अनुमति न देना, तब वहाँ गणेशजी के साथ परशुराम का वाग्युद्ध होना, गणेश परशुराम का युद्ध और परशुराम द्वारा परशु प्रहार तथा परशु को रोक कर गणेश जी का तीनों लोकों में घूमना, फिर वहीं पर आकर स्थित होना।

४२. परशुराम गणेश युद्ध वर्णन—परशु को गणेशजी द्वारा दाँत से रोकना और उनके दाँत का टूट जाना, उसकी घोर ध्वनि सुन कर सबका उपस्थित होना और फिर पुत्र गणेश का टूटा हुआ दाँत देखकर पार्वती का क्रोधित होना, पार्वती के क्रोध को शान्त करने के लिए शिवजी द्वारा स्तुति किये जाने पर राधा-कृष्ण का आगमन, कृष्ण के वरदान से गणेश को वक्रतुण्ड नाम प्राप्त होना, श्रीराधा द्वारा पार्वती को समझाना तथा श्रीराधा के हाथ के स्पर्श से गणेशजी के घाव का भर जाना।

४३. परशुरामकृत पार्वती स्तुति—परशुराम को श्रीकृष्ण द्वारा वर की प्राप्ति, श्रीराधा द्वारा परशुराम और गणेशजी को वर की प्राप्ति, पार्वती द्वारा परशुराम को वर प्राप्ति, उसके बाद परशुराम का अपने घर आना।

४४. कार्तवीर्यवंश विनाश वर्णन—पिता जमदग्नि के समक्ष परशुराम द्वारा हैहयवंशीय कार्तवीर्य के विनाश का वृत्तान्त कहना, तब क्षत्रियों के विनाशरूपी पाप की निवृत्ति के लिए जमदग्नि द्वारा परशुराम को प्रायश्चित्त का उपदेश देना, फिर तप करने हेतु परशुराम का महेन्द्र पर्वत पर जाना।

४५. जमदग्नि वध—मृगयोत्सुक शूरसेनादि राजपुत्रों द्वारा परशुराम से वैर का बदला लेने की दृष्टि से जमदग्नि के आश्रम में आकर जमदग्नि के शिर को काटकर अपने नगर को ले जाना, जमदग्नि पत्नी रेणुका द्वारा प्राण त्यागना, उसके पुत्रों द्वारा उसकी दाहक्रिया करना और बारह वर्ष बाद तप से लौट कर परशुराम का अपने आश्रम पर आना।

४६. परशुराम द्वारा २१ बार क्षत्रिय वध वर्णन—पितृ निधन को सुनकर परशुराम द्वारा यह प्रतिज्ञा करना कि मैं क्षत्रियों के रुधिर से पिता का तर्पण करूँगा, फिर युद्ध करने के लिए माहिष्मती नगर जाना और शूरसेन आदि का वध करना तथा इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय विहीन करना।

४७. परशुराम का तपस्या के लिये महेन्द्र पर्वत पर जाना—परशुराम द्वारा कुरुक्षेत्र में पाँच नदियाँ खोदकर क्षत्रियों के रुधिर से भर कर वहाँ पितृतर्पण कर स्यमन्तक पञ्चक नामक तीर्थ बनाना, उस तीर्थ पर परशुराम के समस्त पितरों का उपस्थित होना और परशुराम को क्षत्रियवध का प्रायश्चित्त करने के लिए कहकर अन्तर्धान हो जाना, परशुराम का तीर्थाटन करना और फिर सिद्धिवन में तप करना, वहाँ अश्वमेध यज्ञ कर समस्त पृथ्वी को कश्यप के लिए प्रदान करना, अन्त में महर्षि और्व के आश्रम में राजा सगर का जन्म होना और फिर पृथ्वी के सभी राजाओं को जीतना तथा राजा सगर द्वारा वशिष्ठ की आज्ञा से अश्वमेध यज्ञ का विचार करना।

४८. सगर प्रतिज्ञापालन—अश्वमेध यज्ञ के प्रसङ्ग से राजा सगर द्वारा कार्तवीर्य के वंशज राजाओं का वशिष्ठ की आज्ञा से वध न करके उन्हें राज्यभ्रष्ट, धर्मभ्रष्ट और जातिभ्रष्ट करना।

४९. सगर दिग्विजय—सगर की दिग्विजय यात्रा, सगर का विवाह वर्णन, पृथ्वी के सभी राजाओं से कर ग्रहण करते हुए अपने नगर में लौट कर नागरिक सत्कार को प्राप्त करना, वशिष्ठ के आश्रम में जाना, वहाँ उनका सत्कार, उसके बाद अपनी दो पत्नियों के साथ राज्यसुख भोगना।

५०. सगर का और्व ऋषि के आश्रम जाना—राजा सगर को अपनी दोनों पत्नियों से पुत्र प्राप्ति न होने के कारण दुःखी होना और अपनी दोनों पत्नियों सहित पुत्रप्राप्ति के लिए महर्षि और्व के आश्रम में जाना, राजा से ऋषि का पूछना और राजा द्वारा अपने अपुत्रत्व दुःख को बताना और फिर ऋषि द्वारा उन्हें पुत्र होने का उपाय करना।

५१. असमंजस त्याग—सगर पत्नियों में एक को एक और दूसरी पत्नी को साठ हजार पुत्र होने का ऋषि द्वारा वरदान प्राप्त होना, उसके बाद केसिनी को एक असमंजस का जन्म होना और सुमति को साठ हजार पुत्रों का जन्म होना, फिर असमंजस के शरीर में पिशाच का वास होने से उसके घोर अत्याचारों से राजा सगर द्वारा उस पुत्र का परित्याग करना।

५२. अश्वमोचन—सगर पुत्रों के उपद्रव से त्रस्त देवों का ब्रह्माजी के पास आना, पितामह के निर्देश पर देवों का कपिलाश्रम जाना, सगर पुत्रों के नाश के लिए कपिल मुनि का वरदान, सगर के घर में अश्वमेध यज्ञ का आरम्भ होना, सगर पुत्रों का अश्व के साथ समस्त भूतल पर जाना।

५३. सगर पुत्रों का विनाश—देवराज इन्द्र द्वारा अश्वमेध यज्ञ के अश्व को चुराना और कपिलमुनि के आश्रम में उसे छोड़ना, सगर के साठ हजार पुत्रों द्वारा अश्व को वहाँ देखना, कपिल मुनि के आश्रम में अश्व को देखकर उन सबका कहना कि अश्व को चुराने वाले ये कपिल मुनि ही हैं, ऐसा सोचकर उनको घसीटना तब कपिलमुनि की क्रोधाग्नि में उन सबका जलकर भस्म हो जाना।

५४. कपिल आश्रम में स्थित अश्व को लाना—राजा सगर के पास नारदमुनि का आना, उनके सब पुत्रों के वध से दुःखी राजा को समझाना और फिर असमंजस के पुत्र अंशुमान् द्वारा कपिलाश्रम से अश्व को लाने की राय देना, अंशुमान् का अश्व को लेकर लौटना।

५५. अंशुमान द्वारा राज्य प्राप्ति—महाराजा सगर का अश्वमेध यज्ञ को सम्पन्न कर अपने पौत्र अंशुमान् को राज्य सौंपना।

५६. गंगा का लाना—सगर के साठ हजार पुत्रों द्वारा खोदी गयी भूमि पर सर्वत्र गड्ढे पैदा होना और समुद्र द्वारा पृथ्वी को आप्लावित करना, गोकर्ण तीर्थ की महानता की प्रशंसा, गोकर्ण तीर्थ के ऋषियों का महेन्द्र पर्वत पर परशुराम के पास जाना और समुद्र द्वारा भूमि को ऊबड़-खाबड़ बनाने की बात कहकर भूमि को समतल बनाने का अनुरोध करना, समुद्र द्वारा भूमि को सही कर देना, उसके बाद अंशुमान् पुत्र भगीरथ द्वारा अपने पूर्वजों के उद्धार के लिए गङ्गा को लाने के लिए शिव को प्रसन्न करना, शिवजी द्वारा गङ्गा को शिर में रोकना, फिर गङ्गा के जल को महर्षि जह्नु द्वारा पी लेना और जाँघ से निकालना, जिसके कारण गङ्गा का जाह्नवी नाम होना।

५७. वरुण का आगमन वर्णन—सगर-पुत्रों द्वारा खोदी गयी भूमि को सागर द्वारा नष्ट करने के कारण ऋषियों का परशुराम के पास जाना, उनसे सागर द्वारा भूमि को छोड़ने का अनुरोध करना, क्रोधित परशुराम धनुष पर बाण रख कर चलाना, जिससे समुद्र का सूखना, समुद्र के स्वामी वरुणदेव का आना, परशुराम से हाथ जोड़कर निवेदन करना।

५८. राम द्वारा गोकर्ण क्षेत्र का समुद्धार—परशुराम द्वारा यज्ञपात्र फेंकने से तालाब और झरने बनना,

समुद्र द्वारा नष्ट-भ्रष्ट की गयी भूमि को छोड़कर ऊपरी सीमा में स्थित होना, ऋषियों द्वारा परशुराम की प्रशंसा कर गोकर्ण तीर्थ पर लौटना, देवताओं द्वारा परशुराम की प्रशंसा करना।

५९. वैवस्वत मनु की उत्पत्ति—वरुण की वंशावली, मार्तण्ड की वंशावली और उनका वंश वर्णन।

६०. वैवस्वतमनु की सृष्टि वर्णन—वैवस्वत मनु से दश पुत्रों की उत्पत्ति, पिर यज्ञ से इला नामक कन्या का होना, इला का सुद्युम्न के रूप में बदलना और फिर उमावन में जाने के कारण सुद्युम्न का पुनः स्त्री हो जाना और फिर इला और बुध से चन्द्रमा की उत्पत्ति होना, जिससे चन्द्रवंश का प्रारम्भ होना।

६१. गान्धर्वमूर्च्छनालक्षण वर्णन—द्वारकापुरी के बलभद्र द्वारा राजकुमारी रेवती का विवाह होना और रेवती और बलभद्र का वृद्धता से प्रभावित न होने में गान्धर्व विद्या (संगीत) का प्रभाव तथा संगीत विद्या का संक्षिप्त परिचय।

६२. गान्धर्व लक्षण—पुनः संगीतशास्त्र का विस्तार से परिचय।

६३. इक्ष्वाकुवंश वर्णन—राजा शर्यात की वंशावली, राजा इक्ष्वाकु की वंशावली, राजा इक्ष्वाकु द्वारा अपने पुत्र विकुक्षि को अत्याचारी होने के कारण नष्ट करना, बाद में राजा कुवलाश्व द्वारा राक्षस धुन्धु का वध करना, कुवलाश्व की वंशोत्पत्ति, मान्धाता की राज्य समृद्धि, अन्य राजाओं और उनके कार्यों का वर्णन, राजा सत्यव्रत का चरित्र वर्णन, सत्यव्रत द्वारा विश्वामित्र के परिवार का पालन करना, वशिष्ठ की गाय को मार कर विश्वामित्र के परिवार को खिलाने से सत्यव्रत को शाप देना, तब त्रिशंकु नाम पाना, राजा त्रिशंकु को विश्वामित्र द्वारा स्वर्ग भेजना, राजा हरिश्चन्द्र, सगर आदि की रोचक कथा, सगर द्वारा समस्त हैहयवंशीय राजाओं को पराजित् कर उनके धर्म को नष्ट करना, राजा सगर के साठ हजार पुत्रों का चरित्र वर्णन, फिर अंशुमान्, दिलीप, राजा भगीरथ, नाभाग आदि का चरित्र चित्रण, इसके बाद दिलीप, रघु, दशरथ, राम और उनके भाई एवं पुत्रों का वर्णन। फिर राम से लेकर राजा बृहद्बल तक के राजाओं के कार्यों का वर्णन।

६४. निमिवंश वर्णन—इक्ष्वाकुपुत्र निमि के वंश में राजा जनक की उत्पत्ति, उन्हीं के वंश में आगे राजा सीरध्वज की पुत्री सीता की उत्पत्ति, जिनका राम के साथ विवाह, उसके बाद राजा निमि के वंशज बहुलाश्व तथा अन्य राजाओं का वर्णन।

६५. यदुवंश वर्णन —अत्रि से चन्द्रोत्पत्ति, चन्द्रमा के पृथ्वी पर गिरने से औषधियों की उत्पति, ब्रह्माजी द्वारा चन्द्रमा को लोकपालक बनाना, राज्य पाकर भ्रष्ट चन्द्रमा द्वारा वृहस्पति की पत्नी तारा का अपहरण करना, उससे सम्भोग करना, तारा द्वारा चन्द्रमा को पुत्र बुध का जन्म होना, फिर बुध और इला से राजा पुरुरवा की उत्पत्ति, पुरुरवा-उर्वशी से छः पुत्रों की उत्पत्ति, चन्द्रमा को यक्ष्मा रोग होना और अत्रि द्वारा उसका रोग निवारण।

६६. चन्द्र वंश का वर्णन—पुरुरवा उर्वशी कथानक, बुध पुत्र पुरुरवा का उर्वशी के साथ विवाह वर्णन, पुरुरवा उर्वशी की रोचक कहानी, पुरुरवा के चार पुत्रों में विश्वावसु के भीम, भीम के जह्नु, उसके बाद विश्वामित्र और परशुराम की उत्पत्ति कथा, परशुराम और विश्वामित्र की वंशावली, दान, व्रत, सत्य और तप की महिमा वर्णन।

६७. धन्वन्तरि की उत्पत्ति वर्णन—राजा पुरुरवा का पुत्र आयुष् का वंशानुचरित, सागर मन्थन से धन्वन्तरि की उत्पत्ति कथा, विष्णु के वरदान से दूसरे जन्म में राजा दीर्घतमा के पुत्र के रूप में धन्वन्तरि की उत्पत्ति तथा उनकी वंशावली, काशी और लखनऊ के वसने की कथा, भगवान् शंकर द्वारा काशीवास की कथा, काशीवासियों द्वारा गणेश्वर निकुम्भ की पूजा करना, निकुम्भ से काशीराज द्वारा पुत्र का वर न प्राप्त होने के कारण

गणेश्वर के स्थान का छिन्न-भिन्न करना, गणेश्वर द्वारा काशी को निर्जन होने का शाप देना और फिर वहाँ भगवान् शंकर का वसना, काशी के राजाओं का क्रमशः वर्णन, रजि वंश वर्णन, महाराज रजि से इन्द्र द्वारा पुत्रत्व प्राप्त कर राज्य ग्रहण करना, फिर राजपुत्रों द्वारा इन्द्र से राज्य छीनना, इन्द्र का बृहस्पति के पास जाना, बृहस्पति द्वारा रजि पुत्रों की बुद्धि भ्रष्ट करना और इन्द्र की पुनः प्रतिष्ठा करना।

६८. ययातिचरित वर्णन—मरुत् और नहुष की वंशावली, वृद्ध राजा ययाति द्वारा पुत्रों से आयु माँगना तथा सबसे छोटे पुत्र पुरु द्वारा आयु देना और युवावस्था का पूर्ण भोग करने के बाद आयु को पुरु को लौटा कर राजा का सन्यास ग्रहण करना, भोग से वैराग्य को प्राप्त राजा द्वारा नैतिक उपदेश देना।

६९. कार्तवीर्य अर्जुन की उत्पत्ति—महाराजा यदु का वंश वर्णन और वंशानुचरित वर्णन में कार्तवीर्य, सहस्त्रार्जुन का जन्म और दत्तात्रेय से अजेयत्व वरों की प्राप्ति, कार्तवीर्य का समुद्रावगाहन तथा कार्तवीर्य द्वारा सूर्य को शक्ति प्रदान करना तथा सूर्य द्वारा आपव मुनि के आश्रम को जलाना तथा आपव मुनि द्वारा शाप देना कि इस अजस्त्र तपोवन को आगे अर्जुन बहाल करेगा तथा तेरा परशुराम वध करेगा, सहस्त्रार्जुन द्वारा अनेकों राजाओं को जीतने के वृत्तान्त में लङ्काधीश रावण पर भी विजय प्राप्त करना, उसके बाद कार्तवीर्य के वंशज तालजंघादि का वर्णन।

७०. तपोवन दग्ध वर्णन—कार्तवीर्य के पास विप्ररूप से सूर्य का आना और राजा से समुद्र, नदी, वन, पर्वतादि को भोजनार्थ माँगना, राजा द्वारा देने पर सूर्य द्वारा सबको जला देना, उसी में आपव मुनि के आश्रम को जलाना और मुनि द्वारा शाप देना, फिर राजा क्रोष्टु की वंशावली।

७१. वृष्णि वंश वर्णन—महाराजा सात्वत की वंशावली एवं वंशानुचरित, सूर्य से सत्राजित् को स्यमन्तकमणि की प्राप्ति, फिर स्यमन्तकमणि कैसे भगवान् कृष्ण को प्राप्त हुई और उन्होंने वभ्रु (अक्रूर) को दिया, इसकी सम्पूर्ण कहानी, फिर माद्रीवंश का वर्णन, अन्धकवंश वर्णन, पाण्डवों की उत्पत्ति, वसुदेव की कहानी, भगवान् श्रीकृष्ण के जन्म का वृत्तान्त, कृष्ण द्वारा कंस वध, देवकी और वसुदेव, यशोदा के जन्मों की कथा, विष्णु के अवतार के रूप में श्रीकृष्ण की कथा का विस्तार से वर्णन, बलराम और कृष्ण की वंशावली, कृष्ण की सभी पत्नियों तथा उनसे उत्पन्न पुत्रों का वर्णन।

७२. स्तव समाप्ति वर्णन—ऋषियों के द्वारा भगवान् विष्णु का मनुष्य के रूप में अवतार लेने का कारण पूछना, फिर सूतजी द्वारा भगवान् विष्णु के बारह अवतारों की कहानी बताना, उसके बाद शुक्राचार्य द्वारा असुरों को जीतने के लिए भगवान् शिव की तपस्या करने जाना, उसी बीच भृगुपत्नी द्वारा रक्षित असुरों को मारने का इन्द्र का प्रयास, भृगुपत्नी द्वारा इन्द्र का जड़त्व, इन्द्र के शरीर में प्रविष्ट विष्णु द्वारा भृगुपत्नी के शिर को काटना, फिर भृगु द्वारा विष्णु को मनुष्य के रूप में जन्म ग्रहण करने का शाप देना, उधर इन्द्र द्वारा अपनी पुत्री जयन्ती को शुक्राचार्य की सेवार्थ भेजना, उधर भगवान् शंकर का शुक्राचार्य के समक्ष उपस्थित होना और शुक्राचार्य द्वारा उनकी स्तुति करना।

७३ विष्णु माहात्म्य वर्णन—शुक्राचार्य द्वारा शिव से मन्त्र प्राप्त कर लौटना, इन्द्रपुत्री जयन्ती की सेवा से प्रसन्न शुक्राचार्य द्वारा जयन्ती के साथ दश वर्ष तक अदृस्य होकर सहवास में स्थित होना, असुरों का शुक्राचार्य के पास आना तथा उन्हें न देख कर निराश लौटना, फिर देवगुरु बृहस्पति द्वारा शुक्राचार्य के रूप में असुरों को शिक्षा देना, दश वर्ष पूर्ण होने पर शुक्राचार्य का असुरों के पास आना और स्वयं को शुक्राचार्य बताना तथा बृहस्पति को शुक्राचार्य न कहकर असुरों को समझाना, असुरों द्वारा असली शुक्राचार्य को छली-कपटी कहकर लौटाना, क्रुद्ध शुक्र

द्वारा उन्हें बुद्धिहीन होने का शाप देना, फिर बृहस्पति के कपट का पता चलना, तब वामन वेषधारी विष्णु द्वारा असुरेश्वर बलि को बाँधना और असुरों की देवों द्वारा पराजय होना और असुरों द्वारा शुक्राचार्य से क्षमा माँगना, अन्त में भगवान् विष्णु के ९ अवतारों का वर्णन तथा भावी दशवें अवतार में कल्कि के रूप में अवतरित होकर संसार के प्राणियों के दुःखों को हरने की भविष्यवाणी करना।

७४. तुर्वसु आदि का वंश वर्णन—ययाति पुत्र तुर्वसु के पुत्रों का वर्णन, तुर्वसु वंश का पुरुवंश में विलय, दुह्युवंश वर्णन, अनुवंश वर्णन, अनु के वंश में कुछ राजाओं के बाद हेमपुत्र बलि की उत्पत्ति और उनका चरित्र वर्णन, सुदेष्णा पुत्र दीर्घतमा की कथा, उषिज की पत्नी ममता के साथ उषिज के भाई बृहस्पति का सहवास, गर्भ में उषिज के वीर्य द्वारा उन्हें रोकना और फिर बृहस्पति द्वारा उसे शाप देना, तब उषिज के वीर्य से दीर्घतमा की उत्पत्ति, दीर्घतमा द्वारा वृषभ से वृषभ धर्म की प्राप्ति और फिर वृषभधर्मानुसार उनका अपने छोटे भाई औतथ्य की पत्नी के साथ सहवास, बृहस्पति द्वारा नदी में बहाना, वहाँ बलि द्वारा अपने रनवास में रखना, फिर दासी और बलि की पत्नी से बलि पुत्रों को पैदा करना, अन्त में गौतम ऋषि के रूप में विख्यात होना, फिर बृहद्रथ के २५ राजाओं की वंशावली, फिर नन्दवंश वर्णन, मौर्य वंश, गुप्त वंश, शुक्लवंशीय अन्धक वंशीय, आभीर, गदमी, यवन और तुषार (अंग्रेज) राजाओं का राज्यकाल वर्णन, उसके बाद अन्त में कलियुग की अन्त की स्थिति और सतयुग के आने की भविष्यवाणी तथा परिस्थितियों का वर्णन।

उत्तर भाग उपसंहार पाद ४

१. प्रलय का आख्यान—बीस ऋषियों का वर्णन, अमितभासी २० ऋषियों का वर्णन, बीस सुखों का अस्तित्व, चौदह मनुओं का वर्णन, स्वयम्भू को दक्ष धर्म, भव और ब्रह्म से उसी रूप के चार पुत्रों का वर्णन, प्रथम मेरुसावर्ण में दक्ष पुत्रों मरीचि आदियों और सुधर्मा के द्वादश और नौ का होना, द्वितीय सावर्ण में धर्म के पुत्रों का देवता होना, इन्द्र होना और सप्तर्षि होना, तृतीय सावर्ण में देवों की काम गमन जवाद्युति, चतुर्थ सावर्ण में रुद्र के पुत्रों का पंचगण होना, सब मन्त्रों के क्षीण होने पर संहार स्थिति, तब सब प्रपञ्च का प्रकृति में लीन हो जाना, ब्रह्मा के दिन की वर्णगणना अर्थात् सृष्टिकाल की गणना।

२. शिवपुर वर्णन—भूर्भुवः स्वः आदि सात कृत लोकों और सात अकृत लोकों के स्थानियों के साथ स्थानों का वर्णन—वैराजों की ब्रह्मस्वरूपता, परार्द्ध संख्या गणना, गणना करने योग्य संख्या और न गणना करने योग्य असंख्या विचार, क्रोशयोजनादि का परिमाण विचार, पृथ्वी से लेकर ध्रुवपर्यन्त योजनों की ऊँचाई का विचार, ध्रुव से ऊपर ब्रह्मलोक की योजनों में ऊँचाई का विचार, मनुष्य के दुष्कर्मों द्वारा अधोगति प्राप्त करने वाले नरकादिकों का भेद विवेचन, उस उस कर्म के करने से उस उस नरक की प्राप्ति का वर्णन, सब पंचभूत निर्मित प्राणियों की स्वयम्भू द्वारा बनायी गयी संख्या से गणना, लोकोत्तर वर्णन प्रसङ्ग में शिवपुर वर्णन।

३. प्रतिसर्ग वर्णन—भक्तियुक्त पुरुषों का शाश्वत रुद्रपद का प्राप्त करना अर्थात् रुद्र में विलीन हो जाना, संहार प्रसंग में पाँच भूतों का एक-दूसरे में लीन हो जाने के वर्णन, धर्म और अधर्मों का गुणमात्रात्मकता से वर्णन, तीन प्रकार के मोक्षों का वर्णन, स्वर्गीय देवों और मनुष्यों के विषय में दोष देखने से वैराग्य के उदय होने का वर्णन, सत्य क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ, अक्षर, भोज्य, विभु, पुरुष आदि शब्दों का निर्वचन और अन्त में तीन प्रकार के प्रलयों का वर्णन।

४. ब्रह्माण्डावर्त वर्णन—ब्रह्मा की पुनः उत्पत्ति, इस चार पाद वाले वायु प्रोक्त ब्रह्माण्ड महापुराण के सुनने, पढ़ने, पढ़ाने से प्राप्त फल का वर्णन, ब्रह्माण्ड पुराण के सृजन से लेकर ऋषियों द्वारा उसके संरक्षण की शिष्य परम्परा का इतिहास, इस ब्रह्माण्ड पुराण के दानाधिकारियों का लक्षण वर्णन तथा अन्त में श्री महेश्वर के लिए नमन।

ब्रह्माण्डपुराण के अन्तर्गत ललितोपाख्यान की विषयानुक्रमणिका

५. अगस्त्ययात्राजनार्दन का आविर्भाव—तीर्थयात्रा प्रसङ्ग में महर्षि अगस्त्य का कांचीपुर पहुँचना और देवी कामाक्षी की पूजा करना, वहाँ पर उनके समक्ष भगवान् विष्णु का प्रकट होना और अगस्त्य मुनि से देवी ललितेश्वरी की कथा को वर्णन करने का अनुरोध करना।

६. हिंसादि रूप कथन—तीनों लोकों के शासक होने के कारण मद में चूर इन्द्र ने स्वेच्छा से विहार करने पर मध्य मार्ग में श्रीशंकर द्वारा भेजे गये ऋषि दुर्वासा के लिए तुष्टदेवी से प्राप्त माला से किसी विद्याधरी द्वारा माल्यार्पण किया जाना, सामने आये हुए इन्द्र के लिए दुर्वासा द्वारा उस दिव्य माला का अर्पण किया जाना और इन्द्र द्वारा उस माला को अपने हाथी ऐरावत के शिर में डाल देना, ऐरावत के शिर से भूमि पर गिरना और दुर्वासा द्वारा इन्द्र को शाप देना और फिर उस शाप से इन्द्र का राज्यविहीन होना, तब इन्द्र का गुरु बृहस्पति से अपने दुःख की कहानी कहना और फिर गुरु बृहस्पति द्वारा इन्द्र को पाप के फल का परिपाक और हिंसा के स्वरूप का वर्णन करना।

७. स्तेय पान कथन—विश्वासघात और धन हरण के प्रसङ्ग द्वारा काँचीपुर में रहने वाले वज्र नामक चोर के भूमि में गाड़े हुए धन के दशवें भाग को चुरा कर वीरदत्त किरात द्वारा जलाशय, देवाशय आदि का बनवाना तथा उसके मरने पर वज्राख्य चोर की मृत्यु पर्यन्त वायुमार्ग में स्थित होना, तब द्विजवर्मा (वीरदत्त) किरात की पत्नी द्वारा रुद्र की पूजा, करना तब वज्राख्य चोर की मृत्यु होना, तब उस चोर को स्वर्ग मिलना और वीरदत्त को शिवलोक को प्राप्त करना और फिर चोरी और सुरापान आदि करने के पाप का वर्णन और उससे प्राप्त फल का वर्णन।

८. अगम्य और आगमादि और उनका प्रायश्चित्त वर्णन—माता, भाभी, बहिन के साथ समागम करने के पाप का प्रायश्चित्त वर्णन तथा अपनी पत्नी के साथ समागम विधि वर्णन तथा अभक्ष्य भक्ष्य भोजन विधान।

९. देवासुर अमृत मंथन—कश्यप पुत्र दनु की पुत्री से उत्पन्न पुत्र देवरूप का इन्द्र द्वारा शिर काटने के पाप से तथा दुर्वासा ऋषि के शाप से इन्द्र सहित सब देवों का राज्यश्री से विहीन होना, फिर इन्द्र का भगवान् विष्णु के पास जाना, वहाँ उन्हें असुरों से मिल कर समुद्र मन्थन का परामर्श देना और यह कहना कि समुद्र में से जो अमृत निकलेगा, उसे मैं छल द्वारा देवताओं को पिला दूँगा, तब सब देवता अमर हो जायेंगे। अतः देवों दानवों का सागर मन्थन में लग जाना, सागर मन्थन में दैत्यों की पराजय।

१०. मोहिनी का प्रकट होना, मलकासुर वध—समुद्र मन्थन में प्राप्त अमृत को लेकर देवों और दैत्यों में युद्ध होना, तब विष्णु का मोहिनी रूप धारण कर अमृत बाँटना और फिर समस्त अमृत देवों को दे देना और फिर पुनः देवदानव संग्राम होना तथा अमृतपान के कारण देवों की जय और दैत्यों की पराजय होना, विष्णु द्वारा मोहिनी रूप धारण की चर्चा सुनकर शिव का पार्वती के साथ विष्णु के पास आना और उनसे उस मोहिनी रूप को धारण करने का निवेदन करना, तब विष्णु का मोहिनी रूप धारण करना तो उनको देख कर शिव का मोहित होकर उस मोहिनी के पीछे दौड़ना और फिर उनके वीर्यपात से महाबल का जन्म होना, उसके बाद भण्डासुर और उसकी राज वंशावली और ललिता देवी की उत्पत्ति।

भण्डासुर की कहानी

११. भण्डासुर की उत्पत्ति—शंकर द्वारा भस्म किये गये राख से भण्डासुर की उत्पत्ति, गणेशोपदिष्ट शतरुद्री जाप करने के कारण भगवान् शंकर द्वारा उसे साठ हजार वर्ष तक अखण्ड राज्य करने का वरदान देना।

१२. ललिताप्रादुर्भाव—भण्डासुर का शोणितपुर में साठ हजार वर्ष तक राज्य करना, अपने भ्रष्ट राज्य को पुनः प्राप्त करने हेतु इन्द्रप्रस्थ में इन्द्र का ललिता देवी की पूजा करना, भण्डासुर द्वारा पूजा में विघ्न पहुँचाना।

१३. ललिता देवी की स्तुति—ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं द्वारा ललिता शक्ति की स्तुति करना।

१४. मदनकामेश्वर प्रादुर्भाव—अलौकिक रूप सौन्दर्य के अनुरूप वर हेतु विष्णु, ब्रह्मा का विचार करना और तब करोड़ों कामदेवों के सौन्दर्य को लेकर भगवान् शंकर का प्रकट होना।

१५. महादेवी शंकर विवाहोत्सव वर्णन—ललितादेवी का शंकर के साथ विवाह और वैवाहिक महोत्सव में कामधेनु कल्पादि सदा समृद्धि देने वाले पदार्थों का उस नगर में वास होना, समस्त देवों द्वारा अपने अपने अनुसार वैवाहिक उपहार प्रस्तुत करना और उनकी प्रसन्नतार्थ वहाँ देवों का विकास।

१६. सेना सहित विजय यात्रा—देवी ललिता का भण्डासुर के साथ युद्ध के लिए तत्पर होना, ललिता देवी के आयुध और अश्वारूढ़ शक्तियों का वर्णन।

१७. दण्डिनाथाश्यामलसेना यात्रा—दण्डिनाथ की पैदल सेना के पदार्पण का वर्णन तथा दण्डिनाथा के आयुधों और सैनिक शक्तियों का वर्णन।

१८. ललितापरमेश्वरी सेना जययात्रा—महाराज्ञी ललिता का युद्ध के लिए प्रस्थान करना और उनकी सैन्यशक्तियों का वर्णन तथा ललिता के पच्चीस नामों का वर्णन।

१९-२० श्रीचक्रराजरथ तथा ज्ञेयचक्रपर्वस्थ देवतानामों का प्रकाशन, किरिचक्ररथ में देवियों के नामों का वर्णन—ललिता और भण्डासुर का युद्ध प्रारम्भ वर्णन।

२१. भण्डासुर अहंकार—भण्डासुर द्वारा अपने नगर की सुरक्षा करना, भण्डासुर के भाई विषंग को मन्त्री कुटिलाक्ष द्वारा युद्ध के लिए भेजना।

२२. दुर्मद कुरुण्ड वध वर्णन—ललिता देवी की सेनापति संपत्करी के साथ भण्डासुर के सेनापति और उसके भाई कुरण्ड का युद्ध और उस युद्ध में दोनों का वध।

२३. करंकादि पाँच सेनापतिवधवर्णन—भण्डासुर की कुटिलाक्ष के साथ युद्धविषयक मन्त्रणा करना और उसके परामर्श से करंकादि पाँच सेनापतियों को युद्ध के लिए भेजना, वहाँ राक्षस सेना द्वारा सर्पिणियों को पैदा करने वाला अस्त्र प्रहार करना और शक्ति सेना द्वारा नेवले पैदा करने वाला अस्त्र पैदा कर सर्पिणियों का संहार करना।

२४. बलाहक आदि सात सेनापति वध वर्णन—भण्डासुर द्वारा सात सेनापतियों को प्रकाश से चकाचौंध करने वाले सूर्य यन्त्र के साथ युद्धक्षेत्र भेजना तथा उनके द्वारा शक्ति सेना को तेज प्रकाश से व्याकुल कर देना, तब दण्डिनाथा द्वारा अन्धकार के रथ पर सवार होकर उनका वध करना।

२५. विषंगपलायन वर्णन—युद्ध में त्रिलोक विजयी सेनापति के मरने से भण्डासुर का चिन्तित होना और फिर अपने बहादुर भाई विषंग को युद्ध क्षेत्र में भेजना और साथ में पन्द्रह सेनापतियों और १५ अक्षौहिणी सेना को भेजना तथा रात्रि के समय सोती हुई शक्तिसेना पर प्रहार करना, वहाँ घोर युद्ध होना तथा उस युद्ध में विषंग का युद्धक्षेत्र से भागना।

२६. भण्डपुत्र वध—देवी ललितेश्वरी के आदेश से युद्धशिविर की रक्षा के लिए शिविर के चारों ओर बहुत ऊँचा अग्नि प्राकार का निर्माण कराना और फिर युद्धक्षेत्र में भण्डासुर द्वारा भेजे गये भण्डासुर के पुत्रों के साथ नौ वर्ष की ललिता कुमारी का युद्ध होना और उस युद्ध में कुमारी द्वारा भण्डासुर के पुत्रों का दो सौ अक्षौहिणी सेना के साथ वध करना।

२७. गणनाथपराक्रम वर्णन—भण्डासुर द्वारा विशुक्र को युद्धक्षेत्र में भेजना और विशुक्र द्वारा मायावी

युद्ध को प्रारम्भ कर शक्तिसेना को आतंकित करना तब ललितेश्वरी के मुख से गणनाथ का उत्पन्न होना और गणनाथ के युद्ध कौशल से भण्ड और विशुक्र का युद्धक्षेत्र से पलायन करना।

२८. विशुक्र विषंगवध वर्णन—भण्डासुर के दो पुत्रों विषंग और विशुक्र का विशाल सेना के साथ युद्ध क्षेत्र में आना और उनका ललिता देवी की सेनापति दण्डिनाथा और मन्त्रिनाथा का किरिचक्ररथ और गेयचक्ररथ पर सवार होकर युद्ध करना और भण्डासुर के दोनों भाइयों विशुक्र और विषंग का वध करना।

२९. भण्डासुर वध वर्णन—भण्डासुर का कुटिलाक्ष के साथ मन्त्रणा करना और कुटिलाक्ष के साथ विशाल सेना लेकर ललिता देवी के साथ अनेकों प्रकार के आसुर अस्त्रों एवं असुरों को उत्पन्न कर युद्ध करना तथा ललिता देवी द्वारा सबका संहार करना। वहाँ भण्डासुर द्वारा हिरण्यकशिपु, हिरयाक्ष, रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद, केशादि को उत्पन्न कर युद्ध करना तथा ललिता द्वारा नरसिंह, वाराह, राम, लक्ष्मण, कृष्ण आदि को उत्पन्न कर सबका संहार करना, अन्त में ललितेश्वरी द्वारा भण्डासुर वध।

३०. मदनपुनर्भव वर्णन—शिव पार्वती विवाह की कथा, कार्त्तिकेय की जन्मकथा, तारकासुर वध वर्णन, इन्द्र पुत्री देवसेना का कार्त्तिकेय के साथ विवाह वर्णन।

३१. सप्तकक्ष्या मतंगकन्या उत्पत्ति वर्णन—श्रीललिता द्वारा भण्डासुर को मार देने पर ब्रह्मा आदि देवताओं से प्रेरित विश्वकर्मा और मयदानव द्वारा हेमकूट आदि नवीन पर्वतों पर लवणादि और सात समुद्रों पर विचित्र गोपुरमुकुट द्वार, शाल, उद्यान आदि से युक्त ललिता देवी और मन्त्रिणी के लिये सात कक्ष्यों वाले नगर का निर्माण करना और फिर मतंग कन्या का प्रादुर्भाव होना।

३२. श्रीनगर त्रिपुरा सप्तकक्षापालक देवता प्रकाशन वर्णन—श्रीललिता के लिये दिव्य श्रीनगर का निर्माण।

३३. पुष्पराग प्राकारादिमुक्ताकारान्त सप्तकक्षान्तर कथन—रत्नमयगृह में ललिता देवी की रस रसायन सिद्ध आराधकों, सिद्धों, अप्सराओं और गोरक्षों के लिये बनाये गये श्रीनगर का वर्णन, रुद्रालोक का वर्णन।

३४. दिक्पालों द्वारा शिवलोक का अन्तर—महारुद्र और दूसरे रुद्रों के द्वारा श्री ललिता की आराधना। चन्द्रशेखर के साथ साथ अन्य देवों द्वारा श्रीललिता की स्तुति, पूजा आदि का वर्णन।

३५. महापद्माटवी अर्घ्यस्थापन कथन—महाराज्ञी श्रीललिता देवी की अति शानदार प्रभुसत्ता का वर्णन, अनेकों मार्तण्ड, भैरव और शीत, चन्द्र आदि द्वारा श्रीललितेश्वरी की स्तुति, पूजा आदि का वर्णन। महापद्माटवी में शक्तियों का आगमन तथा उस श्रीनगर में अग्नि, चन्द्रमा, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र की उपस्थिति वर्णन।

३६. चिन्तामणि गृह के अन्दर की कथा का वर्णन—चिन्तामणि गृह का वर्णन, देवियों के आवासों का वर्णन, शक्तियों द्वारा देवी की स्तुति, सर्वज्ञ और सर्वशक्तिशाली श्रीचक्र का वर्णन।

३७. गृहराज के अन्दर का कथन—दिव्यगृहराजभवन में ललिता देवी की पजा अर्चना, शिव और ललिता का अलौकिक सौन्दर्य वर्णन।

३८. मन्त्रराज साधन कथन—महादेवी ललिता के अप्रतिम और अलौकिक शृङ्गारिक रूप सौन्दर्य का वर्णन और उनकी पूजा का फल (प्रभाव) वर्णन।

३९. काञ्चीय कामक्षी वर्णन—काञ्चीपुरम में महादेवी ललितेश्वरी काकामाक्षी के रूप में वर्णन तथा वहाँ पूजा करने का फल वर्णन तथा दशरथादि को वहाँ पूजन करने से फल प्राप्ति का वर्णन।

४०. काञ्चीपुर माहात्म्य—काञ्चीपुरम में खेल-खेल में गौरी द्वारा शिव जी की आंखों को हाथों से ढक

देने पर समस्त संसार में अन्धकार छा जाने से सांसारिक क्रियाओं के संचालन बन्द होने के वर्णन, जिस पर शिव द्वारा गौरी का त्याग करना और गौरी का दुःखित होना और बाद शिव और गौरी का एक हो जाने का वर्णन। काञ्चीपुरम में कम्पानदी में स्नान करने का फल कथन और वहाँ परपूजा करने का फल वर्णन।

४१. श्रीविद्यायन्त्र उपासना—श्रीविद्या के ध्यान करने और पूजा आराधना करने से सभी प्रकार की मनोकामनाओं का पूर्ण हो जाना।

४२. देवी पूजा में मुद्रा—कामाक्षी देवी की पूजा में हाथ की आकृतियों (मुद्राओं) द्वारा पूजा करने का महत्त्व वर्णन।

४३. श्रीदेवीपूजन दीक्षा कथन—सहस्राक्षर विद्या के साथ देवी की पूजा के लिये विधि विधान, शिक्षा अथवा पूजा के विषय गुरु का महत्त्व और गुरु शिष्य सम्बन्ध वर्णन।

४४. देवी पूजा प्रकार वर्णन—कामाक्षी देवी की पूजा के लिये विधि विधान सावधानियाँ।

***

कृष्णदास संस्कृत सीरीज
२६५
****

कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्

ब्रह्मवैवर्तपुराण

मूल तथा भाषानुवाद

भाषाभाष्यकार
एस. एन. खण्डेलवाल
(श्री नाथ खण्डेलवाल)

प्रथम भाग
(ब्रह्मखण्ड, प्रकृतिखण्ड एवं गणपतिखण्ड)

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
वाराणसी

विषयानुक्रमणिका

अध्याय पृष्ठाङ्क

प्रथम ब्रह्मखण्ड

तृतीय गणपतिखण्ड

❖❖❖

कृष्णदास संस्कृत सीरीज
२६५
****

कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्

ब्रह्मवैवर्तपुराण

मूल तथा भाषानुवाद

भाषाभाष्यकार
एस. एन. खण्डेलवाल
(श्री नाथ खण्डेलवाल)

द्वितीय भाग
(श्रीकृष्णजन्मखण्ड)

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
वाराणसी

विषयानुक्रमणिका

❖❖❖

चौखम्बा संस्कृत सीरीज
१५५
****

कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्

बृहद्धर्मपुराणम्

हिन्दी अनुवाद सहित

भाषाभाष्यकार
एस. एन. खण्डेलवाल

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस
वाराणसी

विषयानुक्रमणिका

अध्याय | पृष्ठांक

पूर्वखण्ड

❖❖❖

कमलाचण्डी ग्रन्थमाला-१०

बृहन्नील-तन्त्रम्

(तारा-काली-साधना-विधि)

(आशा-सुशीला हिन्दी व्याख्या सहित)

भाष्यानुवाद एवं सम्पादक

स्वामी शत्रुघ्न दास

सहायक

विकास थपलियाल 'शिवम'

प्रकाशक

श्री मधुसूदन प्रकाशन

पो0ओ0 जाखचौरा,

टिहरी गढ़वाल - 249130 (उत्तराखण्ड)

अनुक्रमणिका

त्रयोविंश: पटल:

चतुर्विंश: पटल:

परिशिष्टम्

प्राभातिक कृत्य (तारा साधने)

प्रभातिक कृत्य (काली साधने)

भट्टाचार्योपाह्वश्रीकृष्णानन्दागमवागीशप्रणीतः

बृहत्तन्त्रसारः

भाषाटीकाविभूषितः

(द्वितीयो भागः ⁕ तृतीयपरिच्छेदतः परिशिष्टात्मकः)

विषयानुक्रमणी

तृतीयः परिच्छेदः

चतुर्थः परिच्छेदः

पञ्चमः परिच्छेदः

परिशिष्टम्

भट्टाचार्योपाह्वश्रीकृष्णानन्दागमवागीशप्रणीतः

बृहत्तन्त्रसारः

भाषाटीकाविभूषितः

(प्रथमो भागः * प्रथमद्वितीयपरिच्छेदात्मकः)

विषयानुक्रमणी

प्रथमः परिच्छेदः

Thanjavur Sarasvati Mahal – Series No. 373

श्रीः

॥ श्रीदक्षिणामूर्तिसंहिता ॥

SRI DAKSHINAMURTI SAMHITA

Edited By :

Thethiyur. S. KRISHNAMURTHI SASTRI
Senior Sanskrit Pandit,
Sarasvati Mahal Library, Thanjavur.

THANJAVUR MAHARAJA SERFOJI'S
SARASVATI MAHAL LIBRARY, THANJAVUR.

॥ विषयानुक्रमणिका ॥

पटल सं. | विषयः | पृष्ठम्

ग्रन्थेऽस्मिन् प्रतिपटलं अधस्ताद्वक्ष्यमाणरीत्या विषयाः वर्ण्यन्ते —

अनुबन्धे

श्रीदक्षिणामूर्तिसंहिताग्रन्थोपक्रमभागः —

श्रीवासुदेवानन्दसरस्वतीग्रंथमाला

षष्ठं सप्तमं च पुष्पम् (६-७)

श्रीदत्तपुराणम्

श्री. प. प. श्रीवासुदेवानन्दसरस्वतीटेंबेस्वामिविरचितम्

सटीकम्

चैत्र शुक्ल १ रविवासर: शके १८७६] [दिनांक ४ एप्रिल सन १९५४

मूल्यम् ९ रूपकाः

श्रीदत्तपुराणस्थविषयाणां

अनुक्रमणिका

॥ श्रीहरिः ॥

1897

महर्षि वेदव्यासप्रणीत

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

[प्रथम खण्ड]

(सचित्र, सरल हिन्दी-व्याख्यासहित)

स्कन्ध १ से ६ तक

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या

तृतीय स्कन्ध

चतुर्थ स्कन्ध

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या

॥ श्रीहरि: ॥

1898

महर्षि वेदव्यासप्रणीत

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

[द्वितीय खण्ड]

(सचित्र, सरल हिन्दी-व्याख्यासहित)

स्कन्ध ७ से १२ तक

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गीताप्रेस, गोरखपुर

विषय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ-संख्या

अष्टम स्कन्ध

शोधप्रकाशन ग्रन्थमाला — २१

देवीकालोत्तरागमः

निरञ्जनसिद्धविरचितवृत्त्या

भाषानुवादेन च सहितः

सम्पादकोऽनुवादकश्च

राष्ट्रियपण्डितः श्रीव्रजवल्लभद्विवेदः

शैवभारती-शोधप्रतिष्ठान-निदेशकः

प्रकाशकः

शैवभारती-शोधप्रतिष्ठानम्

जंगमवाड़ीमठ, वाराणसी - २२१ ००१

विषयानुक्रमणी

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण



वर्ष ७९

संख्या १

देवीपुराण [महाभागवत]-शक्तिपीठाङ्क

गीताप्रेस, गोरखपुर

'देवीपुराण [महाभागवत]-शक्तिपीठाङ्क' की विषय-सूची

निबन्ध-सूची

देवीपुराण [महाभागवत]

निबन्ध-सूची

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
456

रुद्रयामलतन्त्रोक्तं

श्रीदेवीरहस्यम्

भाषाटीकासमन्वितम्

(प्रथमो भागः * षष्टिपटलात्मकः)

व्याख्याकारः
श्रीकपिलदेव नारायण
स्वरूपावस्थित

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

विषयानुक्रमणी

अष्टमः पटलः

(पारायण-जपविधिः)

नवमः पटलः

(सम्पुटविधिः)

दशमः पटलः

(पुरश्चरणविधिः)

परिशिष्टम्

ज्वालामुखीपटलम्

श्रीशारिकापटलम्

महाराज्ञीपटलम्

उद्धारकोशः

श्रीकमलाचण्डी ग्रन्थमाला-१०

फेत्कारिणी-तन्त्रम्

('अञ्जलि-स्वाती' हिन्दी व्याख्या संवलिता)

व्याख्याकार

स्वामी शत्रुघ्न दास

एवं

विकास थपलियाल 'शिवम'

प्रकाशक

मधुसूदन प्रकाशन

पो0ओ0 जाखचौरा,

टिहरी गढ़वाल - 249130 (उत्तराखण्ड)

विषयानुक्रमणिका

चतुर्दशः पटलः

पञ्चदशः पटलः

षोडशः पटलः

चौखम्बा संस्कृत सीरीज
११८
***

अथ शिवप्रोक्तम्

गन्धर्वतन्त्रम्

'ज्ञानवती'-हिन्दीभाष्येण विभूषितम्

भाष्यकारः सम्पादकश्च
आचार्य राधेश्याम चतुर्वेदीः
व्याकरणाचार्यः एम.ए.(संस्कृत), पीएच.डी., (लब्धस्वर्णपदकः)
शास्त्रचूडामणिविद्वान्
इमेरिट्स प्रोफेसर एवं अध्यक्षः,
संस्कृत विभागे
देवसंस्कृतिविश्वविद्यालये, गायत्रीकुञ्जशान्तिकुञ्जम्, हरिद्वारम्
(पूर्वाचार्यः) कलासंकायस्ये संस्कृतविभागे,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालयस्य, वाराणसी

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी

२. विषयवस्तु

प्रथम पटल—गन्धर्वतन्त्र का प्रारम्भ मङ्गलाचरण के पश्चात् गाधिसुवन विश्वामित्र एवं अत्रिमुनि के पुत्र दत्तात्रेय के प्रश्नोत्तर से प्रारम्भ होता है । यज्ञ आदि के अनुष्ठान के बाद भी संसार से मुक्ति प्राप्त करने की सम्भावना न होने के कारण खिन्नमना विश्वामित्र से दत्तात्रेय ने कहा कि मैं आपको नन्दिकेश्वर से प्राप्त उस गन्धर्वतन्त्र का वर्णन सुनाऊँगा जिसे पार्वती ने शिव से सुना था । शिव ने कहा—मैंने जिस तन्त्र को पहले बतलाया वह तामस, राजस और सात्त्विक तीन प्रकार का है । तामस से नरक राजस से स्वर्ग और सात्त्विक तन्त्र से मोक्ष प्राप्त होता है । एक चतुर्थ तन्त्र भी होता है जो निष्फल होता है ।

इस तन्त्र की परम्परा—शिव ने कहा—सबसे पहले कृष्ण ने मुझसे प्राप्त किया । कृष्ण ने ब्रह्मा को बतलाया । मैंने इसे नन्दी को उपदिष्ट किया । फिर मैंने इसे पुष्पदन्त नामक गन्धर्व को दिया । इस प्रकार यह तन्त्र गन्धर्वों में फैल गया । ब्रह्मा से मुनियों ने प्राप्त किया । बृहस्पति से इन्द्र और शुक्राचार्य से दैत्यराज विरोचन को मिला । पुलस्त्य से उनके वंशजों ने प्राप्त किया । इस प्रकार यह तन्त्र पृथिवीतल पर आ गया ।

स्वायम्भुव मन्वन्तर में जब नमुचि आदि दैत्यों से देवगण त्रस्त हो गये तब वे पितामह के पास रक्षार्थ गये । ब्रह्मा शिव के पास गये और स्तुति किये । भगवान् शिव निर्जन वन में प्रविष्ट होकर राक्षसों को मतिभ्रान्त करने के लिये ऐसे शास्त्रों की रचना की जिनको सुनने मात्र से राक्षस पतित हो गये । न्याय वैशेषिक सांख्य चार्वाक बौद्ध मीमांसा आदि शास्त्रों का मैंने ही तत्तद् रूपों से प्रवर्त्तन किया । परिणामस्वरूप यज्ञ याग आदि बन्द हो गये और देवता लोग निर्बल निस्तेज हो गये। उनके विष्णु लोक जाकर प्रार्थना करने पर विष्णु शिव के पास गये । उनके द्वारा स्तुति किये जाने पर भगवान् शिव अपशास्त्र की रचना से विरत हो गये और शिवरचित उन तन्त्रों के पाठक एवं अनुयायी विष्णु की माया से मूढ़ होकर लक्ष्यच्युत हो गये ।

द्वितीय पटल—द्वितीय पटल में शक्ति अर्थात् महात्रिपुरसुन्दरी की चर्चा की गयी है । चूँकि यह ब्रह्मा विष्णु और रुद्र नामक तीन देवताओं की नियामिका है अत: इसे त्रिपुरा कहा जाता है । आराधक के समक्ष धर्म अर्थ काम नामक तीन पुरुषार्थों को उपस्थापित करने के कारण भी इसे त्रिपुरा कहा जाता है । अत्यन्त

सुन्दरी होने से इसका नाम त्रिपुरसुन्दरी है। त्रिपुरसुन्दरी के मन्त्र के उद्धारक्रम में पहले वाग्भव कूट को बतलाया गया है—कएईलह्रीं। इसके जप से मनुष्य वागीश होकर सब कुछ प्राप्त कर लेता है। दूसरा कूट कामराज का है। इसका स्वरूप है—हसकहलह्रीं। तीसरा कूट शक्ति का है—सकलह्रीं। इस प्रकार तीनों कूटों के पन्द्रह अक्षरों को एक साथ रखने पर यह पञ्चदशी विद्या कही जाती है। इसी में पहले 'ह्रीं' जोड़ने पर यह षोडशी विद्या कहलाती है। वाग्भव कूट में से 'ए' 'ई' को हटाकर 'ह स' जोड़ने पर शेष दो कूटों के साथ यह लोपामुद्रा विद्या हो जाती है। वाग्भव कूट के स्थान पर कएकलह्रीं तथा शेष दो कूट मिलकर शाम्भवी विद्या होती है। इसी प्रकार क ए के बदले स ह कहकर कलह्रीं तथा शेष दो कूट मिलाकर शाक्ती विद्या बनती है। पञ्चदशाक्षरी विद्या में श्रीं ह्रीं जोड़ने पर यह सप्तदशाक्षरी विद्या होती है। सबसे उत्तम राजराजेश्वरी विद्या है। यह सोलह कूटों वाली है। इसका स्वरूप इस प्रकार है—१. श्रीं, २. ह्रीं, ३. क्लीं, ४. ऐं, ५. सौः, ६. ओं, ७. ह्रीं, ८. श्रीं, ९. कएईलह्रीं, १०. हसकहलह्रीं, ११. सकलह्रीं, १२. सौः, १३. ऐं, १४. क्लीं, १५. ह्रीं १६. श्रीं। इस प्रकार यह सोलह कूटों वाली विद्या है।

तृतीय पटल—इसमें पञ्चमी विद्या का वर्णन है। पृथिवी आदि पाँच तत्त्व पञ्चदेवात्मक हैं। ये तत्त्व पाँच देवों की शक्तियाँ हैं। उन्हें इस प्रकार जानना चाहिये।

तत्त्व	शक्ति
पृथिवी	ब्रह्माणी
जल	वैष्णवी
तेज	रौद्री
वायु	ईश्वरी
आकाश	माहेश्वरी

पृथिवी से लेकर प्रकृति तत्त्व तक पाँच कूट हैं। इन कूटों की पाँच देवतायें—कामेश्वरी, वज्रेश्वरी, भगमाला, त्रिपुरसुन्दरी और परा हैं। पाँचवी शक्ति परा परब्रह्म स्वरूपिणी है। इस पराशक्ति की उपासना के लिये साधक को समयाचार का पालक ज्ञानविशुद्धात्मा गुरुभक्त जितेन्द्रिय एवं गन्धर्वरूपवान् होना चाहिये। जो इस पञ्च कूटात्मिका महाविद्या को जानता है वह खेचर होता हुआ भोग के साथ मोक्ष प्राप्त करता है। पञ्चमी विद्या का स्वरूप इस प्रकार है—कएईलह्रीं हसकलह्रीं, हकहलह्रीं, कहयलह्रीं हकलसह्रीं। यह विद्या भोगमोक्षप्रदा है।

इसी प्रकार महासौभाग्यसुन्दरी विद्या है । यह तीन कूटों वाली है । पहला सौभाग्य कूट दूसरा उक्त तीनों कूट और तीसरा कामबीज होता है । इसी विद्या के मध्य कूट का मध्यम कूट स्वप्नावती विद्या होती है । इस पञ्चमी विद्या के जप के साथ देवी की कौलमार्गी पूजा करने का बहुत अधिक फल होता है । स्वप्नावती विद्या का जप करने से सद्यः आकर्षण होता है । इसी प्रकार एकादशी विद्या के जप से भी महाफल का लाभ होता है । इस विद्या का स्वरूप है— कलह्रीं कहलह्रीं सकलह्रीं ।

चतुर्थ पटल—इस पटल में त्रैलोक्यमोहन कवच का वर्णन है । यह राजराजेश्वरी देवी का कवच है । इससे चारो पुरुषार्थ प्राप्त होते हैं । यहाँ अट्ठाईस वर्णों वाली विद्या की चर्चा है—ऐं क्लीं सौः हस्रैं हसकलरीं हस्रौः षोडशी राजराजेश्वरी विद्या श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौः । इसके पश्चात् तत्तत् अङ्ग आदि में रक्षण की चर्चा है । यह त्रैलोक्यमोहन कवच कहीं भी दुर्लभ है । यह अत्यन्त गोपनीय है । इसे परशिष्य कृपण भक्तिहीन चुम्बक, परहिंसारत दम्भ कुशील को और यहाँ तक कि भक्तिरहित स्वपुत्र को भी नहीं बतलाना चाहिये । जो गुरु ऐसे व्यक्ति को बतलाता है उसकी आयु तथा कीर्त्ति नष्ट हो जाती है और शिव की आज्ञा से योगिनियाँ उसे मार डालती हैं ।

इस कवच की धारणा करने के बाद श्रीचक्र में देवी की पूजा करनी चाहिये। यह पूजा शक्ति के साथ की जाती है अकेले नहीं । शिवरूप में अपना ध्यान कर देवी का ध्यान करना चाहिये तथा शक्ति एवं शिव में अद्वैत भाव के साथ साधना करनी चाहिये । ऐसा करने वाला अष्टसिद्धियों का स्वामी बनकर त्रैलोक्य में विचरण करता है । इस पटल के अन्त में यन्त्र-रचना की विधि का वर्णन कर कवच को गोपनीय रखने का निर्देश दिया गया है ।

पञ्चम पटल—इस पटल में श्रीचक्र का वर्णन है । सच्चिदानन्दरूपिणी शक्ति जब अपनी इच्छा से अपने को विश्वरूप में व्यक्त करना चाहती है तब वह सर्वप्रथम बिन्दु के रूप में आविर्भूत होती हैं । चक्ररचना के क्रम में किसी धातु के चौकोर पत्र पर सबसे पहले बिन्दु बनाया जाता है । इसके पश्चात् चक्र के शेष भाग की रचना की जाती है । इस चक्र का स्वरूप निम्नलिखित श्लोक से जानना चाहिये—

बिन्दुत्रिकोणवसुकोणदशारयुग्म-
मन्वस्रनागदलसंयुतषोडशारम् ।
वृत्तत्रयं च धरणीसदनत्रयं च
श्रीचक्रमेतदुदितं परदेवतायाः ॥

(सबसे पहले बिन्दु उसके बाहर शाक्त त्रिकोण फिर अष्टकोण फिर दो दशार

तत्पश्चात् चतुर्दशकोण उसके बाहर अष्टदल कमल फिर षोडशदल कमल उसके बाद तीन वृत्त और फिर तीन भुपूर बनाये जाते हैं ।)

त्रिपुर सुन्दरी के इस चक्र के बनने के बाद इसकी पूजा का वर्णन किया गया है । यह कहा गया कि तीन वृत्तों की पूजा नहीं करनी चाहिये । यह यन्त्र महात्रिपुरसुन्दरी का शरीर है । शरीर तीन प्रकार का होता है—भौतिक अर्थात् स्थूल, मनोमय अर्थात् सूक्ष्म और पर अर्थात् ज्ञानमय । यह यन्त्र भगवती का मनोमय शरीर है । इस यन्त्र में शिव की गोद में बैठी हुई त्रिपुरा का ध्यान आवाहन पूजन आदि करना चाहिये । इसके बाद अन्य अङ्ग देव-देवियों की पूजा तत्तत् स्थानों में करने के बाद आवरण-पूजा करने का विधान है । इसके पश्चात् काम्यप्रयोग का वर्णन है जो सोलह दिनों का अनुष्ठान होता है । चक्र में ब्रह्मा विष्णु शिव की रेखाओं में स्थित देवताओं का वर्णन करने के बाद सर्वाशापरिपूरक आदि चक्रों तथा तत्रस्थ देव-देवियों का वर्णन कर चक्र में स्थित कामरूप पूर्णगिरि जालन्धर एवं ओड्यान पीठों की चर्चा के साथ यह कहा गया है कि सृष्टिक्रम स्थितिक्रम एवं संहारक्रम से इनकी पूजा महागुह्य है । साधक के द्वारा सहस्रार में की जाने वाली पूजा सर्वोत्तम होती है । द्वितीय कोटि की पूजा शिव एवं कृष्ण के द्वारा सर्वदा की जाती है ।

षष्ठ पटल—इस पटल में सर्वप्रथम 'देवो भूत्वा देवं यजेत्' के नियम के अनुसार अशुद्ध शरीर को कर्मयोग द्वारा देव शरीर बनाने की चर्चा की गयी है । इस क्रम में सबसे पहले गुरु का ध्यान करने की बात कही गयी है कि वे सहस्रदल कमल के ऊपर विराजमान हैं । श्वेत वस्त्र से विभूषित वे वरद एवं अभय मुद्रा से युक्त हैं । ऐं ह्रीं श्रीं हसखफ्रें, हसक्षमलवरयूं, हसखफ्रें, हसक्षमवरलईं ह्सौः स्हौः आनन्दनाथपादुकां पूजयामि मन्त्र से गुरु की तथा आनन्दनाथ के बदले अम्बा कहकर गुरुपत्नी की पूजा करनी चाहिये । विधिपूर्वक गुरुपूजा के बाद गन्धर्वतन्त्र के प्रस्तुत पटल में वर्णित १९-२५ तक के सात श्लोकों के द्वारा गुरु की स्तुति करनी चाहिये ।

इसके पश्चात् इस पटल में योग का वर्णन है । कुण्डली जागरण ही योग का प्रारम्भ है । इसी के बाद मन्त्रसिद्धि होती है और फिर योगाभ्यास से साधक जीवन्मुक्त हो जाता है । मूलाधार में स्थित जीव का सहस्रारस्थ परमात्मा से ऐक्य ही योग है । इसके लिये यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान और समाधि नामक आठ योगाङ्गों का अभ्यास करना पड़ता है । आगे चलकर इन अष्टाङ्गों का विस्तार से वर्णन करते हुये समाधि की अत्यन्त विस्तार के साथ चर्चा की गयी है । जिस प्रकार घटाकाश और महाकाश का भेद भ्रान्त है उसी प्रकार जीवात्मा और परमात्मा का भेद भी भ्रम है । दोनों के ऐक्य की संवित् की

उत्पत्ति का नाम समाधि है । इसी विज्ञान से मुक्ति सम्भव है । इसके अनन्तर शरीरस्थ नाड़ी एवं षट्चक्र की चर्चा की गयी है । शरीर में साढ़े तीन करोड़ नाडियाँ हैं उनमें दश मुख्य हैं । दश में भी इडा पिङ्गला सुषुम्ना प्रधान हैं । तीनों में सुषुम्ना सर्वप्रधान है । यह मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक मेरुदण्ड के मध्य से होकर जाती है । मूलाधार में स्वयम्भू लिङ्ग है । यह ब्रह्मा के द्वारा अधिष्ठित है। उसके ऊपर स्वाधिष्ठान और उसके ऊपर मणिपूरचक्र है । यहाँ बीच में बाणलिङ्ग है । उसके ऊपर अनाहत चक्र है । इसके अधिष्ठातृ पुरुष रुद्र हैं । उसके ऊपर विशुद्ध चक्र है । उसके ऊपर आज्ञा चक्र में आत्मा रहता है । आज्ञा के ऊपर गुरुचक्र है । उसके ऊपर कैलास ओर उसके ऊपर बोधिनी है । अन्त में सहस्रदल कमल है ।

अन्त में एक दूसरे प्रकार की समाधि का वर्णन कर पटल की समाप्ति की गयी है ।

सप्तम पटल—सप्तम पटल में नित्यकर्म की चर्चा की गयी है । इस क्रम में सबसे पहले स्नान एवं सन्ध्या का वर्णन है । स्नान तीन प्रकार का होता है—मानसस्नान, बाह्यस्नान और आन्तरस्नान । जो साधक सदा शुद्ध मन वाला है अत एव देवी की पादुका का स्पर्श कर निरन्तर निर्विकल्प भाव में रहता है उसकी यह स्थिति मानसस्नान कही जाती है । बाह्यस्नान में शरीर को मन्त्र से अभिषिक्त करते हैं । आन्तरस्नान वह होता है जिसमें साधक प्राणायाम के साथ शक्ति को परशिव के साथ सङ्गमित कराकर उसके द्वारा उत्पन्न अमृत में निरन्तर स्नान करता रहता है । हृदय-कमल नामक पुष्कर तीर्थ में किया जाने वाला स्नान भी आन्तर स्नान होता है । इसी प्रकार सन्ध्या भी तीन प्रकार की होती है। ध्यानयुक्त होकर सदा अपने को इष्टदेव से अभिन्न समझना मानसी सन्ध्या कहलाती है । एक सन्ध्या कौलिकी होती है जिसमें बाह्यकाल की अपेक्षा नहीं होती । जिस काल में शिव और शक्ति का संयोग होता है वह कौलमार्गी जनों की सन्ध्या कही जाती है । बाह्यसन्ध्या सर्वजन प्रसिद्ध है ।

शूद्र आदि के मोक्षोपाय के विषय में कहा गया है कि त्रिपुरागायत्री की उपासना से पतित, नारी, शूद्र, व्रात्य आदि भी ब्राह्मण हो जाते हैं । त्रिपुरा गायत्री का मन्त्र है—त्रिपुरसुन्दर्यै विद्महे कामेश्वर्यै धीमहि तन्नः क्लिन्ने प्रचोदयात् । तदनन्तर तीन प्रकार के तर्पण की चर्चा की गयी है । आन्तर, मानस एवं बाह्य तर्पण के स्वरूप-निर्वचन के पश्चात् सूर्यार्घ्य मन्त्र का उद्धार बतलाया गया है । मन्त्र है—ह्रीं हंसः मार्त्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय इदमर्घ्यं नमो नमः ।

अष्टम पटल—अष्टम पटल की विषयवस्तु यागभूमि भूतशुद्धि आदि है । जो भूमि केश कीट आदि से रहित, स्निग्ध हो, ऊभड़ खाभड़ न हो, अति नीच

अति उच्च न हो वह याग के योग्य होती है । साथ ही उसे धूल कीचड़ से युक्त, प्राणियों से सङ्कुल, वृक्ष आदि से व्याप्त ऊसर एवं खेती वाली नहीं होना चाहिये । उसके पास जलाशय तथा पुष्प उद्यान होना चाहिये । ऐसी यागभूमि के बाहर देवताओं का पूजन एवं प्रणाम कर साधक अन्दर प्रवेश करे । 'ॐ ह्रीं सर्वविघ्नकृत्सर्वभूतेभ्यो हूं स्वाहा' इस मन्त्र से भूतशुद्धि करने के बाद 'ऐं क्लीं सौः अस्त्राय फट्' से मण्डप के अन्दर अक्षत फेंक कर 'ऐं क्लीं सौः' मन्त्र से वेदी पर पूजा करनी चाहिये । उसके बाद साधक बाँयाँ पैर आगे बढ़ाकर मण्डप में प्रवेश करे और विघ्नों का उत्सारण करे । वर्मबीज 'हुम्' से यज्ञभूमि को देखकर अस्त्र मन्त्र 'अस्त्राय फट्' से प्रोक्षण करना चाहिये । अवलोकन और स्पर्शन से उस भूमि के समस्त दोष दूर हो जाते हैं । पृथिवीगत दोष को दूर करने के लिये वहाँ 'क्लीम्' लिखना चाहिये । याग के लिये उपयोगी द्रव्यों को तब तक ढँककर रखना चाहिये जब तक देवी का आवाहन और स्थापन न हो जाय ।

आसन के विषय में कहा गया है कि यह न अति उच्च और न अति नीच होना चाहिये । आसन और अर्घ्यपात्र टूटा-फूटा नहीं होना चाहिये । विभिन्न प्रकार की सिद्धि के लिए विभिन्न प्रकार के आसन प्रयोग में लाने का विधान है । दो हाथ से अधिक लम्बा डेढ़ हाथ से अधिक चौड़ा और तीन अङ्गुल से अधिक ऊँचा आसन वर्जित है । 'ह्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नमः' से आसन की पूजा कर उस पर पद्म या स्वस्तिक या गोमुख आदि किसी भी विहित आसन से बैठना चाहिये । सुष्ठु अलंकृत होकर मुख में ताम्बूल लेकर साधक तत्तद् दिशाओं में गुरु गणेश दुर्गा आदि की पूजा करे । गोरोचन आदि के मिश्रण से श्रीचक्र की रचना कर उसके सामने पाद्य अर्घ्य आदि रखे । कलश रखकर अग्नि की कलाओं के साथ उसकी पूजा करे । तत्पश्चात् सूर्य कलश को रखकर उसकी भी उसकी कलाओं के साथ पूजा कर आनन्दभैरव की भैरवी के साथ पूजा करनी चाहिये ।

इसके पश्चात् शरीर-शुद्धि की चर्चा की गयी है । इस क्रम में कहा गया है कि यं रं वं वर्णों से शरीर के शोष दाह और प्लावन की भावना करनी चाहिये । फिर तीन प्राणायाम कर योनिमुद्रा दिखानी चाहिये । तत्पश्चात् मन में सूर्य चन्द्र और अग्निमय तीन पुरों का ध्यान करे । उन्हें एक में मिला ध्यान कर उस बिन्दुस्वरूप तेज में एक क्षण डूबकर रक्तसमुद्र का ध्यान करना चाहिये । उस समुद्र में रक्त सिंहासन पर कोटिबालसूर्य के समान अरुणवर्णा त्रिपुरसुन्दरी का ध्यान करने का विधान है । वह देवी चतुर्भुजा है । नीचे के दोनों हाथों में धनुष-बाण और ऊपर के दोनों हाथों में सृणि (= अङ्कुश) और पाश धारण की हुई है । त्रिनेत्रा उस देवी का अपने से अभिन्न रूप में चिन्तन करना चाहिये । ध्यान

का मन्त्र है—ओं ह्रीं हंसः सोऽहं स्वाहा' इसके बाद 'ऐं क्लीं सौः महात्रिपुरसुन्दरि आत्मानं रक्ष रक्ष' मन्त्र से हृदय का स्पर्श करते हुए रक्षा करनी चाहिये तथा ताली बजाकर दिग्बन्ध करना चाहिये ।

नवम पटल—इस पटल में करशुद्धि विद्या एवं न्यास का वर्णन है । न्यास के पहले करशुद्धिकरी मन्त्र का जप कर हाथों को मलना चाहिये । अं आं सौः यह मन्त्र है । इस मन्त्र को पढ़ते हुए दाँयें हाथ में रक्त फूल लेकर मले फिर उसे बायें हाथ में रखकर मलने के बाद कामबीज से पोंछ कर वाग्भवबीज से सूँघने के बाद शेष बीज (= आं) से उस पुष्प को ईशान दिशा में फेंक देना चाहिये । इस अनुष्ठान से हाथ एवं अङ्गुलियों की शुद्धि होती है । इसके बाद ऋष्यादि न्यास करना चाहिये ।

ऋषि छन्द देवता के नाम के न्यास के बिना किया गया जप निष्फल होता है। इस करशुद्धिकरी विद्या के ऋषि दक्षिणामूर्त्ति, छन्द पंक्ति और देवता त्रिपुरसुन्दरी है । इस प्रकार षडङ्गन्यास करना चाहिये । इसके पश्चात् अन्तर्मातृका न्यास के क्रम में कण्ठ हृदय नाभि लिङ्गमध्य मूलाधार भ्रूमध्य में न्यास किया जाता है । बहिर्मातृका न्यास का रूप अकार से लेकर क्षकार तक का है । उसका प्रारम्भ 'क्लीं अं नमः' इत्यादि से होता है । यह न्यास ललाट से लेकर दोनों पादतल तक किया जाता है । देवताओं ऋषियों और राक्षसों के सारे मन्त्र मातृकामन्त्र में सदा स्थित रहते हैं । यह त्रिपुरसुन्दरी मन्त्र सर्वदेवमय सर्वमन्त्रमय है । यह चतुर्विध पुरुषार्थ को देने वाला है । मातृका से सम्पुटित मन्त्रों से अभिमन्त्रित जल को जो पीता है वह वाग्मी पण्डित हो जाता है । इस अभिमन्त्रण में पहले स्वरों को बाद में व्यञ्जनों का उच्चारण होता है । कुम्भक पूरक रेचक प्राणायाम के साथ जल पीने से साधक समस्त कामनाओं की सिद्धि प्राप्त करता है ।

दशम पटल—इस पटल में षोढान्यास का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है । गणेश ग्रह नक्षत्र योगिनी राशि एवं पीठ इन छह से किये जाने वाले न्यास को षोढा न्यास कहते हैं ।

गणेशन्यास—इसमें पचास गणेशों का उनकी शक्तियों के साथ न्यास किया जाता है । पचास वर्णों से एक-एक गणेश के शरीर के पचास अङ्गों में न्यास करने के विधि है । उदाहरण के लिये अं विघ्नेश्वराय श्रियै नमः से ललाट में, आं विघ्नराजाय ह्रियै नमः से मुख में, इसी प्रकार अन्य अङ्गों में भी न्यास करना चाहिये।

ग्रहन्यास—इसमें स्वरों के साथ 'सूर्याय नमः' कहकर हृदय में, प वर्ग से सोम का भ्रूमध्य में, कवर्ग से मङ्गल का दोनों नेत्रों में, चवर्ग से बुध का हृदय

में, टवर्ग से बृहस्पति का कण्ठ में, तवर्ग से शुक्र का ग्रीवा में, पवर्ग से शनि का नाभि में, शवर्ग से गुदा में राहु का और ळ क्ष से केतु का दोनों पैरों में न्यास किया जाता है । सभी वर्णों के साथ चन्द्रबिन्दु लगा रहता है ।

नक्षत्रन्यास—पचास वर्णों को अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्रों के साथ जोड़कर नक्षत्रों का चतुर्थ्यन्त उच्चारण करते हुए 'नमः' कहना पड़ता है । साथ ही शरीर के सत्ताईस अङ्गों का स्पर्श करना पड़ता है । इस क्रम में कहीं एक, कहीं दो, कहीं तीन और कहीं चार अक्षरों का उच्चारण किया जाता है । उदाहरण के लिये—अं आं अश्विन्यै नमः इति ललाटे । इं भरण्यै नमः इति दक्षनेत्रे । ईं उं ऊं कृत्तिकायै नमः इति वामनेत्रे । ऋं ॠं ऌं ॡं इति दक्षकर्णे इत्यादि । इस क्रम से अन्त में क्षं हं अं अः रेवत्यै नमः इति वामपादे । यह नक्षत्रन्यास का क्रम है ।

योगिनीन्यास—योगिनियों की संख्या सात है । उनके नाम डाकिनी राकिनी लाकिनी काकिनी शाकिनी और याकिनी है । इनके वर्ण स्वरूप अस्त्र और भोज्य पदार्थ भिन्न-भिन्न हैं । इनके मन्त्र तथा मन्त्रों को पढ़कर न्यस्त होने वाले स्थान भी भिन्न-भिन्न हैं । उदाहरण के लिये डाकिनी का वर्ण शुक्ल, एक मुख, तीन नेत्र, अस्त्र तलवार, पेय मद्य, भोज्य पदार्थ पायस, न्यस्य स्थान कण्ठ है । डाकिनी का मन्त्र इस प्रकार है । अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः डां डीं डमलवरयूं डाकिन्यै नमः डाकिनि त्वग्धातुगते चतुष्षष्टिलक्षकोटि-योगिनीस्वामिनि सर्वसत्त्ववशङ्करि आज्ञां मे देहि मम विच्चे । इसी प्रकार अन्य योगिनियों के भी विषय में जानना चाहिये । प्रत्येक योगिनी के मन्त्र में कुछ अक्षर और शब्द प्रकरणानुसार बदल दिये जाते हैं । जैसे राकिनी के मन्त्र में कण्ठस्थ तथा तालुस्थ स्वर ठं वर्ण रा रीं लमलवरयूं............मांसधातुगते षोडशलक्ष............इत्यादि ।

पीठन्यास—पीठन्यास में पचास पीठों का शरीर के पचास अङ्गों में न्यास करने का वर्ण है । ये पीठ हैं—१. कामरूप, २. वाराणसी, ३. नेपाल, ४. पौण्ड्रवर्धन, ५. पुरस्थिर, ६. चरस्थिर, ७. पूर्णशैल, ८. अर्बुद, ९. काश्मीर, १०. कान्यकुब्ज, ११. आम्रातकेश्वर, १२. एकाम्र, १३. त्रिस्रोत, १४. कामकोट्ट, १५. कैलास, १६. भूतनगर, १७. केदार, १८. श्रीपीठ, १९. ओङ्कारेश्वर, २०. जालन्धर, २१. मालव, २२. कुलान्तक, २३. देवमातृक, २४. गोकर्ण, २५. मारुतेश्वर, २६. अट्टहास, २७. विरजा, २८. राजगृह, २९. कोल्लगिरि, ३०. एलापुर, ३१. कालेश्वर, ३२. प्रणव, ३३. जयन्तिका, ३४. उज्जयिनी, ३५. क्षीरिका, ३६. हस्तिनापुर, ३७. उड्डीश, ३८. प्रयाग, ३९. षष्ठीश, ४०. मायापुर, ४१. जलेश्वर, ४२. मलय, ४३. श्रीशैल, ४४. मेरु,

४५. महेन्द्रगिरि, ४६. वामन, ४७. हिरण्यपुर, ४८. महालक्ष्मी, ४९. उड्डीयान और ५०. छायापुर ।

इसके पश्चात् षोढान्यास के माहात्म्य का वर्णन है । षोढान्यास को न कर जो साधक त्रिपुरसुन्दरी को प्रणाम करता है वह शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त करता है और नरक को जाता है । इस न्यास को करने वाला साक्षात् शिव हो जाता है । इस न्यास को करने वाले को चाहिये कि वह किसी भी व्यक्ति को प्रणाम न करे क्योंकि वह साधक जिस किसी व्यक्ति को प्रणाम करेगा वह तत्काल मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा । साधक को चाहिये कि वह काम क्रोध लोभ अहङ्कार का त्याग करे । जो कुछ अन्न जल ग्रहण करे वह स्त्री के साथ । इस न्यास को दिन में तीन बार करना चाहिये । ऐसा साधक जहाँ रहता है वह क्षेत्र दिव्य हो जाता है । वह जहाँ-जहाँ जाता है त्रैलोक्य निवासी उसे अग्नि पर आरूढ देखते हैं । उसके पूर्ववर्त्ती सात जन्मों के पाप छह मास तक के अभ्यास से जल जाते हैं ।

एकादश पटल—इस पटल में आठ प्रकार के न्यासों के साथ प्राणायाम आदि की चर्चा है । न्यास शरीर के तत्तत् अङ्गों में सम्पन्न होते हैं । सर्वप्रथम आसन न्यास का वर्णन है जिसमें अमृतार्णवासन, पीताम्बुजासन, चक्रासन, सर्वमन्त्रासन, साध्यासन, साध्यसिद्धासन, पर्यङ्कशक्तिपीठ एवं सदाशिवमहाप्रेत-पद्मासन को बतलाया गया है । इन आसन न्यासों के मन्त्रों के उद्धार की भी चर्चा है । उसके पश्चात् वशिनी आदि आठ वाग्देवताओं के न्यास का उद्धार-क्रम बतलाया गया है । इस क्रम में किन-किन अङ्गों में न्यास करना है इसका भी उल्लेख है ।

इसके बाद करन्यास एवं षडङ्गन्यास का वर्णन है । इस क्रम में मूलविद्या की दो आवृत्ति कर समस्त अङ्गुलितलों में स्वाहा वषट् वौषट् हुम् और फट् से न्यास करने के बाद हृदय शिर शिखा दोनों भुजा नेत्रत्रय और अस्त्र में नमः स्वाहा वषट् कवच और वौषट एवं फट् से न्यास करने का विधान बतलाया गया है । अन्त में यह भी कहा गया कि अङ्गन्यास से रहित पूजा होम आदि निष्फल होते हैं ।

चतुष्पीठ न्यास के सन्दर्भ में कामगिरि जालन्धर पूर्णगिरि और ओड्यान पीठों के न्यास को बतलाया गया है । उनके मन्त्रों का उद्धार बतलाने के साथ-साथ तत्तद् देवियों के नाम भी बतलाये गये हैं । कामगिरि की देवी कामेश्वरी, जालन्धर की वज्रेश्वरी, पूर्णगिरि की भगमालिनी और ओड्यान पीठ की देवी महात्रिपुरसुन्दरी है । इनके स्थान मूलाधार, हृदय, भ्रूमध्य अर्थात् आज्ञाचक्र एवं ब्रह्मरन्ध्र है ।

इसी क्रम में तत्त्वादिन्यास की चर्चा की गयी है जिसमें मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक पुनः ब्रह्मरन्ध्र से मूलाधार तक न्यास करना पड़ता है । इस न्यास के मन्त्र का उद्धार-क्रम बतलाये हुए न्यास स्थानों का भी वर्णन किया गया है । इस प्रकार न्यास करने से साधक का शरीर मन्त्रमय हो जाता है और इस प्रकार की पूजा के योग्य बन जाता है । यह सम्मोहन न्यास त्रैलोक्यमोहन की क्षमता रखता है ।

उक्त न्यास के बाद अन्तर्याग और बहिर्याग की चर्चा की गयी है । इस क्रम में सबसे पहले किया गया प्राणायाम आवश्यक होता है । प्राणायाम के विना सब कुछ किया गया निरर्थक होता है । प्राणायाम शब्द का अर्थ है—प्राण अर्थात् जीवन-श्वास का आयाम अर्थात् विस्तार या प्रतिबन्ध । एक निश्चित क्रम में श्वास को अन्दर खींचने, रोकने और छोड़ने की क्रिया प्राणायाम कहलाता है । प्राणायाम से कुण्डलिनी का उद्बोधन होता है । करोड़ों सूर्य के समान तेजोमयी, सिंघाड़े की तरह त्रिकोण मूलाधार में स्थित एवं कालाग्नि की शिखा के समान दीप्तिमती कुण्डलिनी का ध्यान करना चाहिये । हुङ्कार के उच्चारण से इसका उद्बोधन होता है । जीव मूलाधार में और शिव सहस्रार में रहते हैं । कुण्डलिनी शक्ति के साथ जीव भी छः चक्रों का भेदन कर अन्त में सहस्रारस्थ शिव के साथ एक हो जाता है । यही मुक्ति है ।

कुण्डलिनी तीन प्रकार की है उसके बीज भी तीन हैं । प्रथम कुण्डलिनी मूलाधार से लेकर हृदय तक रहती है । इसका वाग्भव (= ऐं) बीज, जो कि पिघले हुए सोने के समान है, के रूप में ध्यान करना चाहिये । इसका नाम वह्निकुण्डलिनी है । हृदय से लेकर कण्ठ तक रहने वाली सूर्यकुण्डलिनी है । यह करोड़ों सूर्य के समान है । इसका बीज कामराज (= क्लीं) है । यह कामराजबीज भी करोड़ों सूर्य की प्रभा के समान है । तीसरी कुण्डलिनी भ्रूमध्य से ब्रह्मरन्ध्र तक है । भ्रूमध्य में शक्तिबीज (= ह्सौः/ह्सौं) हैं । यह बीज करोड़ों चन्द्रमा के समान है इसलिये यह भी कोटि चन्द्र के समान है तथा इससे अमृत झरता रहता है । एक तुरीय कुण्डलिनी भी है जो उक्त तीनों बीजों का मिश्रण है और इसका रूप बिन्दुत्रय होता है । यह देशकाल की सीमा से रहित केवल ज्ञानात्मक होती है । इससे गिरने वाले अमृतबिन्दु से परदेवता का तर्पण अन्तर्याग कहलाता है जो जीवन्मुक्ति देने वाला होता है । यह समस्त पापों का प्रायश्चित्त है । चार सौ प्राणायामों के द्वारा इन चारों कुण्डलियों का ध्यान ब्रह्महत्यादि सम्पूर्ण महापापों का नाशक है ।

द्वादश पटल—जो लोग मानस याग नहीं कर सकते या नहीं करना चाहते उनके लिये मानस पूजा का विधान है । इससे भी वही फल प्राप्त होता है जो

मानस याग से । इस विधि में त्रिपुरसुन्दरी की षोडशोपचार से भावमयी पूजा की जाती है । वे सोलह उपचार है—१. आसन, २. पाद्य, ३. अर्घ्य, ४. आचमन, ५. मधुपर्क, ६. आचमन, ७. पर्यङ्क, पादुका, उद्वर्तन, तैलस्नान, जलस्नान ८.गात्रमार्जन एवं वस्त्रपरिधान, केशविन्यास, सूत्रावली, सिन्दूर, तिलक, रदनच्छद में अलक्तक, अञ्जन, गात्रानुलेपन, आभूषण, ९. गन्ध, १०. पुष्प, ११. धूप, १२. दीप, १३. नैवेद्य, १४. ताम्बूल, १५. दक्षिणा, १६. साष्टाङ्गप्रणाम । जिस प्रकार बाहरी चक्रपूजा होती हैं उसी प्रकार देवी की नव आवरण शक्तियों की मानसी पूजा करनी चाहिये । गृहस्थ केवल मानस पूजा से सिद्धि नहीं प्राप्त करता । उसे बाह्यपूजा भी करनी चाहिये ।

इसके पश्चात् ध्यान-योग का वर्णन किया गया है । न्यास पूजा जप और पुरश्चरण के विना भी केवल ध्यान-योग से सिद्धि मिल सकती है । ब्रह्मा विष्णु रुद्र मनुष्य सब लोग ध्यान से सिद्धि को प्राप्त किये । ध्यान के लिये एकान्त रमणीय जनकोलाहल-रहित स्थान में आसन लगाकर साधक को गुरु मण्डली को प्रणाम करने के बाद जीव-ब्रह्म की एकता का ध्यान करना चाहिये । पृथिवी आदि समस्त तत्त्वों का विपरीत क्रम से परमात्मा में लय का ध्यान करना चाहिये । ब्रह्म और प्रकृति के संयोग से हुई वृष्टि से समस्त विश्व परिप्लावित हो रहा है—ऐसा ध्यान करना चाहिये । उस जल में अपना तथा प्रकृति का चिन्तन कर पुन: सृष्टिप्रक्रिया की भावना करनी चाहिये । भूबीज (= लं) से पृथिवी को कठिन कर प्रणव से उस पृथिवी का दो भाग कर उस ब्रह्माण्ड के अन्दर नित्य मेढ़क की भावना करनी चाहिये । मेढ़क की पीठ पर कालाग्निरुद्र रूप आधारशक्ति का मूलप्रकृति के रूप में ध्यान करना चाहिये । वह मूलप्रकृति कूर्म के आकार की है । उसके शिर पर श्वेतवाराह है जो अपने दाँतों के ऊपर शस्यश्यामला पृथिवी को धारण किये हुए हैं । इस पृथिवीध्यान के साथ कल्पवृक्ष की वाटिका का भी चिन्तन करना चाहिये । इस वाटिका में कल्पवृक्षों के अतिरिक्त चन्दन, कर्णिकार, मातुलुङ्ग, करञ्ज, द्राक्षा, अनार, आम, कटहल आदि नाना प्रकार के वृक्ष विराजमान है । सुगन्धित पुष्पों वाली लतायें भी हैं ।

उस वाटिका में रत्न-मण्डप स्थित है । वह चार सौ कोस लम्बा चौड़ा और चार द्वारों वाला है । उसमें अनेक रत्नों वाले तोरण वितान दण्ड ध्वजायें लगी हैं । लोकपाल सिद्ध चारण गन्धर्व आदि वहाँ उपस्थित होकर अपना-अपना कार्य कर रहे हैं । उस विशाल मण्डप के भीतर एक महामाणिक्य मण्डप है । उसके नीचे बालसूर्य के किरणों जैसी चौकोर वेदी है । उसके ऊपर सिंहासन है जिसके चारो पायें शरीरधारी धर्म ज्ञान वैराग्य और ऐश्वर्य के द्वारा पकड़े गये हैं । सिंहासन के मध्य सर्वतत्त्वात्मक कमल है जिसकी कर्णिका में सूर्य, सूर्य के बीच चन्द्र और चन्द्र के बीच अग्नि का ध्यान करना चाहिये । उस सिंहासन के चारो

ओर तथा ऊपर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव—ये पञ्च प्रेत विराजमान है। प्रकटा आदि देवियों का ध्यान करने के बाद पर्यङ्क शक्तिपीठ के ऊपर त्रिपुराम्बा का ध्यान करना चाहिये जो कामेश्वर की गोद में विराजमान है। आगे चलकर इस कामेश्वरी के रूप सौन्दर्य का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। नाना रत्नाभरण से युक्त वह इच्छाशक्तिरूपी पाश, ज्ञानशक्तिरूपी अङ्कुश और क्रियाशक्तिमय धनुष बाण ली हुई है। यह देवी सर्वदेवमयी सर्वमन्त्रमयी सर्वेश्वर्यमयी तथा साक्षात् परमानन्दरूपिणी है।

अन्त में इस ध्यान का माहात्म्य बतलाया गया है कि ऐसा ध्यान करने वाला पृथिवी पर देवता के रूप में विचरण करता है। वह मनुष्य रूप में देवता है। उसके सारे कार्य देवता बुद्धि से सम्पन्न होते हैं इसलिये वह चतुर्वर्ग को प्राप्त कर लेता है।

त्रयोदश पटल—इस पटल में बाह्य याग का वर्णन किया गया है। पूर्वपटल में वर्णित अम्बिका का ध्यान करने के बाद उसके मूलमन्त्र से अपने शिर पर पुष्प रखना चाहिये। अपने को ब्रह्म या ईश्वर के रूप में निरन्तर ध्यान करने वाला देवरूप हो जाता है। इस प्रकार के ध्यान के पश्चात् पूजार्घ्यपात्र बनाना चाहिये। इस क्रम में सारे पात्र ताम्र के होने चाहिये। शङ्ख शुक्ति रजत स्वर्ण के भी पात्र प्रयोज्य होते हैं। कौल साधकों के लिये नरकपाल का अर्घ्यपात्र विहित है। महादेवी का पात्र पन्ना माणिक्य हीरा वैदूर्य और नीलम के भी होते हैं।

इसके पश्चात् विशेषार्घ्य बनाना चाहिये। साधक अपने और श्रीचक्र के मध्य में चौकोर मण्डल बनाये। उसके अन्दर षट्कोण उसके अन्दर वृत्त फिर उसमें त्रिकोण लिखकर उस मण्डल की पूजा करे। उस पर अर्घ्यपात्र रखकर अग्नि-मण्डलरूप उसकी कलाओं के साथ पूजा करनी चाहिये। फिर सूर्यमण्डल के रूप में उसकी कलाओं के साथ पूजा करनी चाहिये। इसी प्रकार उसे चन्द्र मण्डलरूप समझकर चन्द्रकलाओं के साथ पूजा करनी चाहिये। उस पात्र में रत्नेशी, कामरूप पूर्णगिरि जालन्धर ओड्यान पीठों का पूजन कर पञ्चवक्त्र शिव तथा उनकी गोद में स्थित सुरादेवी का धेनुमुद्रा से आवाहन ध्यान कर उस सुरा का गालिनीमुद्रा से अमृतीकरण करना चाहिये। हसक्षमलवरयूं आनन्दभैरवाय वौषट् तथा सहक्षमलवरयूं सुरादेव्यै वौषट् मन्त्रों से आनन्द भैरव और सुरा को जोड़ना चाहिये। इसी प्रकार मन्त्रोच्चार के साथ सन्दीपन आदि कर बोधिनी मुद्रा से बोधन करना चाहिये। पात्रों की संख्या नव होती है जिनमें चार पात्र वटुक के तीन पात्र गुरुओं के तथा एक-एक पात्र अपने होते हैं। कुशाग्र से सुरा को लेकर सबको तृप्त करने के बाद तीन बार स्वयं प्राशन करना चाहिये। पात्र के

टूटने या सुरा के भूमि पर गिरने से अशुभ होता है। उसके निराकरण के लिये होम करना चाहिये । आचार्य को दिये जाने वाले समस्त पदार्थों का प्रोक्षण अवश्य करना चाहिये ।

चतुर्दश पटल—इस पटल में आधारशक्ति से लेकर कामेश्वर तक की पूजा का विधान वर्णित है । ओङ्कार बिन्दु के मध्य कामपीठ का ध्यान कर उसके ऊपर कामेश्वर का ध्यान करना चाहिये । वे एकवक्त्र चतुर्भुज भस्मोद्धूलित शरीर वाले हैं। हाथ में त्रिशूल पिनाक कमल और बीजपूर लिये हुए श्वेत कमल पर विराजमान हैं । तत्पश्चात् कामेश्वर की गोद में बैठी कामेश्वरी का ध्यान करना चाहिये । ध्यान का मन्त्र—ऐं ह्रीं सौः महात्रिपुरसुन्दर्यमृतचैतन्यमूर्त्तिं कल्पयामि । वह साधक को चतुर्वर्ग दे रही है । इसके पश्चात् नाराच मुद्रा से रक्षा करनी चाहिये । अवगुण्ठन दिग्बन्धन करने के बाद प्राणायाम कर पुष्पाञ्जलि से देवी का आवाहन करना चाहिये और बाह्य तथा आभ्यन्तर मूर्त्तियों के ऐक्य की भावना करनी चाहिये । नासिका से वायु को निकालकर पुष्पाञ्जलि पर छोड़ना चाहिये और स्थापना तक पुष्प को हाथ से अलग नहीं करना चाहिये । इसके बाद त्रिखण्डा मुद्रा से देवी को पीठपर रखना चाहिये । 'महापद्मवनान्तःस्थे.....कण्ठस्य देहि मे' श्लोकों का पाठ करना चाहिये ।

आवाहनी मुद्रा से आवाहन सन्निधापनी से स्थापन करने के बाद धेनुमुद्रा से अमृतीकरण करना चाहिये । परमीकरण अवगुण्ठन सकलीकरण करने के बाद सम्मुख मुद्रा से देवी के सम्मुख होकर प्रार्थना करनी चाहिये । इसके अनन्तर 'ऐं क्लीं सौः महात्रिपुरसुन्दरीश्रीपादुकां पूजयामि' से देवी के पैरों में तीन पुष्पाञ्जलि देनी चाहिये । तर्पण अभ्यर्थन के बाद पूजा के लिये प्रार्थना करनी चाहिये । इसके अनन्तर इस पटल में आसन आदि देने की विधि बतलायी गयी है कि आसन स्वागत दर्शन पाद्य अर्घ्य के अन्त में 'नमः' कहना चाहिये । आचमन मधुपर्क पुनः आचमन के अन्त में 'स्वधा' कहना चाहिये । स्नान वस्त्र आभरण के अन्त में 'नमः' गन्ध पुष्प के अन्त में वौषट्, धूप दीप नैवेद्य को 'नमः' के साथ देना चाहिये । पुष्पाञ्जलि ज्ञानमुद्रा से तर्पण तत्त्वमुद्रा से तथा सबके अन्त में योनिमुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिये ।

अन्त में मूलमन्त्र का जप होम और बलि देनी चाहिये । बलिदान के बाद दशाङ्गधूप दीपमाला सिन्दूर पान (= मदिरा) रेशमीवस्त्र नेत्राञ्जन देकर दर्पण दिखाना चाहिये । शिर पर छत्र लगाकर चामर से बीजन करना चाहिये । शङ्ख घण्टा को बजाकर पुनः धूप दिखानी चाहिये । तत्पश्चात् गीत वाद्य क्रीडा कौतुक को नट नर्तक वेश्याओं के साथ सम्पादित कर सर्वात्मभाव से सबकुछ देवी के लिये समर्पित कर अपने को देवीमय होने की भावना करनी चाहिये ।

पञ्चदश पटल—इस पटल में देवी त्रिपुरसुन्दरी के लिये प्रयोज्य सोलह उपचारों, उनके समर्पण विधि आदि की चर्चा की गयी है । १. पहला उपचार आसन है । यह सोना चाँदी वस्त्र पुष्प काष्ठ का हो सकता है । पत्ते का आसन वर्जित है । २. दूसरा उपचार पाद्य है । चन्दन अगर से सुगन्धित शीतल जल शङ्ख या किसी तैजस पात्र में देने का विधान है । ३. श्वेत सरसो मूँग तिल दूध यव रक्तचन्दन पुष्प शङ्ख में रखकर शिर पर अर्घ्य देना चाहिये । ४. गन्धयुक्त स्वच्छ जल शङ्ख अथवा तैजस पात्र में रखकर पाद्य देने से आयु बल यश वृद्धि बढ़ती है । यह आचमन कर्पूर से वासित कालागुरु से प्रधूपित होना चाहिये । ५. मधुपर्क की रचना दही घी जल मधु गन्ने की शर्करा से की जाती है । जल नारियल का होना चाहिये । इस मधुपर्क के दान से साधक ज्योतिष्टोम और अश्वमेघ यज्ञ का फल प्राप्त करता है । ६. स्नान—कपूर अगुरु कस्तूरी गोरोचन कुङ्कुम नारियल का जल, मधु, ईख का रस, पञ्चगव्य, सर्वौषधि और अन्त में जल यह त्रिपुरा का प्रिय स्नानीय द्रव्य है । प्रत्येक वस्तु के एक हजार पल से महास्नान होता है । सौ पल से मध्य स्नान होता है । दश पल से लघु स्नान होता है । सबको मिलाकर स्नान करने का परिमाण नहीं है । पहले त्रिपादूर्ध्व.. ......मन्त्र फिर मूलमन्त्र के बाद 'त्वमापः......से स्नान करना चाहिये । ७. वस्त्र—वस्त्र का अर्पण न करने वाला याजक पाप के समुद्र में गिरता है । यदि किसी परिस्थिति वश वस्त्र उपलब्ध न हो तो रक्त कमल या जवा कुसुम अर्पित करना चाहिये । मलिन, पुराना, पहना हुआ, अग्निदग्ध आदि वस्त्र देवी को नहीं चढ़ाना चाहिये । रंगविरंगे रेशमी वस्त्र से देवी प्रसन्न होती है । वस्त्रार्पण के समय 'विद्यातन्तु............परिधत्स्व सुरेश्वरि' मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये । ८. अलङ्करण—किरीट शिरोरत्न आदि सोलह अलङ्कारों का अर्पण देवी को सन्तुष्ट और पुष्ट करता है । अलङ्कार अर्पण के समय 'नवरत्नसमायुक्ता........ निवेदितम्' मन्त्र को पढ़ना चाहिये । ९. गन्ध—यह पाँच प्रकार का होता है । गन्ध के अनेक प्रकार हैं । पाँच प्रकार तो सङ्केत मात्र है । सभी गन्धों में मलयज गन्ध उत्कृष्टतम माना गया है । गन्ध अर्पण के समय 'शरीरं ते न जानामि..........विलिप्यताम्' मन्त्र का पढ़ना चाहिये । गन्ध से सुसन्तोषित देवी चतुर्वर्ग फल प्रदान करती है । अञ्जन—स्वर्ण के पात्र में घी तेल से बना हुआ कर्पूरमिश्रित अञ्जन देवी को प्रिय होता है । यह अञ्जन विधवा स्त्री को नहीं बनाना चाहिए । मिट्टी के पात्र में बने हुए अञ्जन के अर्पण से अर्चक को पूजा का फल नहीं मिलता । पुष्पपत्र—दूसरे का, सूँघा गया, चोरी से लाया गया, बासी पत्र पुष्प देवी के लिये वर्जित है । श्वेत रक्त कमल कुमुद पाँच दिनों तक बासी नहीं होते । बिल्व पत्र तीन दिनों तक पर्युषित नहीं होता । दूर्वाङ्कुर मदन एवं बिल्व के अतिरिक्त अन्य पत्र देवी के लिये निषिद्ध है । स्वर्ण आदि से निर्मित पुष्प सर्वोत्तम होता है । पत्र पुष्प फल जिस रूप में विकसित होते हैं

उसी रूप में चढ़ाना चाहिये उल्टा नहीं । पुष्प अर्पण का मन्त्र है—'ब्रह्म विष्णु. ....प्रतिगृह्यताम् ।' ११. धूप—पत्र मुस्ता आदि सोलह वस्तुओं से बनी धूप षोडशी को प्रसन्न करती है । मन्त्र—'वनस्पतिरसो........प्रतिगृह्यताम् ।' १२. दीप—घी का दीपक सर्वोत्तम होता है । सोना चाँदी का दीपपात्र उत्तम होता है । दीपक को दीवट पर रखना चाहिये भूमि पर नहीं । दीपमाला—त्रिपुरभैरवी के लिये दीपमाला देनी चाहिये । यह तीन या पाँच दीपों की होती है । दीप में घी तेल का मिश्रण नहीं करना चाहिये । दीप का मन्त्र—'सूर्याचन्द्र................. प्रतिगृह्यताम् ।' दीप को देवी के दाँयें रखना चाहिये । गन्ध पुष्प भूषण को बायें रखना चाहिये । १३. नैवेद्य—भोजन आदि नैवेद्य को देवी के सामने रखना चाहिये । मद्य को पीछे और अन्य पेय वस्तु को बाँयें रखना चाहिये ।

षोडश पटल—मद्य—मद्य की चर्चा करते हुए कहा गया है कि ईख के रस को दो दिन तक रखने के बाद उसमें आम का रस, मधु, बेर, जामुन, खजूर, नारियल और अङ्गूर के रस मिलायें । इसी प्रकार अन्यान्य वस्तुओं के चूर्ण को स्वर्ण या चाँदी या शीशे के बर्तन में रखकर उसमें चीनी डाल दे । लाल वस्त्र से ढँक दे। चन्दन अगुरु धूप से धूपित करने पर यह देवी का प्रिय मद्य होता है । ब्राह्मण को मद्य का अर्पण नहीं करना चाहिये । यदि वह ऐसा करता है तो उसे ब्रह्महत्या का पाप लगता है । किन्तु यदि ब्राह्मण निर्विकल्प हो जाय तो वह देवी के लिए मद्य-अर्पण का अधिकारी हो जाता है । ऐसा करने पर वह अष्टसिद्धिभाक् हो जाता है । मद्य अर्पण का मन्त्र है—'सुरे चानघ............... विस्फुरणं कुरु ।'

नैवेद्य—नैवेद्य चर्व्य चोष्य लेह्य और पेय भेद से चार प्रकार का होता है । नैवेद्य सर्वयज्ञमय तथा धर्मार्थकाममोक्षप्रद होता है । यह नैवेद्य पात्रता के अनुसार सामिष निरामिष दानों प्रकार का हो सकता है । जो मृग एवं पक्षी बलि के लिये विहित हैं उनके मांस का भोग लगाना चाहिये । निरामिष नैवेद्य की सीमा में सुसंस्कृत, घृत शर्करा दुग्ध से युक्त सुगन्धित, तण्डुल वाला पायस, शाक, हिंगु जीरा आदि मिश्रित आदि अनेक प्रकार के पदार्थ आते हैं । अशुद्ध अपक्व नैवेद्य निषिद्ध है । यह नैवेद्य रजत सुवर्ण ताम्र या पत्थर के पात्र में देना चाहिये । अभाव में कमल के पत्ते पर दिया जा सकता है । नैवेद्य को ढँककर देवी के सामने रखना चाहिये । फिर ढक्कन खोलकर वायु बीज (= यं) से संशोषण अग्नि बीज (= रं) से दहन और वरुण बीज (= वं) से सुधा के द्वारा उस नैवेद्य को धेनुमुद्रा दिखाकर आप्लुत करने के बाद अस्त्रमन्त्र से संरक्षण मूल मन्त्र से अभिषेक करना चाहिये । मन्त्र—मूलदेवी का नाम लेकर 'नैवेद्यं गृहाण स्वाहा' कहना चाहिये । इसके अतिरिक्त 'अन्नं चतुर्विधं...............भुज्यताम्' का भी पाठ करना चाहिये ।

आचमन—जावित्री लवङ्ग कङ्कोल से सुगन्धित जल से आचमन देना चाहिये। मन्त्र—'जातीलवङ्ग.....सुन्दरि। १४. ताम्बूल—कपूर आदि से सुवासित पान का बीड़ा देवी को देना चाहिये। नमस्कार—अनेक स्तोत्रों से देवी की स्तुति करते हुए प्रणाम करना चाहिये। नमस्कार से देवता मनुष्य आदि सब के सब प्रसन्न होते हैं। अत: नमस्कार महाफलदायी है। नमस्कार तीन प्रकार का होता है—१. कायिक, २. वाचिक और ३. मानसिक। पुन: वह अन्य रूप में तीन प्रकार का होता है। १. उत्तम, २. मध्यम और ३. अधम। घुठनों से बैठकर शिर को धरती से लगाना कायिक नमस्कार है। दोनों हाथ जोड़कर धरती का स्पर्श न करना अधम नमस्कार है। घुठनों से धरती को न छू कर केवल शिर से प्रणाम मध्यम कोटि का नमस्कार है। १५. प्रदक्षिणा—दाँयाँ हाथ फैलाकर नम्रशिरा होकर भक्तिश्रद्धा से पूरित देवता को दाँयी ओर रखते हुए गोलाकार में घूमना प्रदक्षिणा है। १६. साष्टाङ्ग प्रणाम—यह सात प्रकार का होता है—१. त्रिकोण, २. षट्कोण, ३. अर्धचन्द्र, ४. प्रदक्षिणा, ५. दण्डवत्, ६. अष्टाङ्ग और ७. उग्र। १. दक्षिण दिशा से वायुकोण तक, वहाँ से ईशान कोण, वहाँ से फिर दक्षिण को जाना त्रिकोण प्रणाम है। २. दक्षिण से वायु कोण वायु से ईशान वहाँ से दक्षिण वहाँ से अग्निकोण, फिर वहाँ से नैर्ऋत्य कोण फिर उत्तर दिशा वहाँ से अग्निकोण और वहाँ से दक्षिण, यह अर्धचन्द्र प्रणाम है। ४. प्रदक्षिणा करते हुये प्रणाम करना प्रदक्षिणा प्रणाम है। ५. अपना आसन छोड़कर देवता के पास जाकर दण्ड के समान भूमि पर लेटना दण्डवत् प्रणाम है। ६. ठोड़ी मुख नासिका हनु नेत्र कर्ण ब्रह्मरन्ध्र से प्रणाम करना अष्टाङ्ग प्रणाम है। ७. जिसमें केवल ब्रह्मरन्ध्र से क्षिति का स्पर्श करते हुए नमस्कार किया जाय वह उग्र प्रणाम कहलाता है। स्वरचित गद्य पद्य से नमस्कार उत्तम, पौराणिक तान्त्रिक मन्त्रों से नमस्कार मध्यम होता है। पर रचित से अधम होता है। मानसिक प्रणाम भी उत्तम मध्यम अधम भेद से तीन प्रकार का होता है।

सप्तदश पटल—इस पटल का विषय प्रकटा आदि देवियों की पूजा विधि तथा मुद्रा का वर्णन है। इन देवियों की पूजा सृष्टि स्थिति संहार क्रम से की जाती है। मोहन और क्षोभण चक्रों की पूजा वामावर्त्त के क्रम से तथा शेष चक्रों की पूजा दक्षिणावर्त्त क्रम से की जाती है। नवचक्रों वाले श्रीचक्र की पूजा के पहले आवरण-शक्तियों की पूजा की जाती है। ये शक्तियाँ नौ हैं। प्रथम आवरण महायोगीश्वर बुद्ध हैं। इनकी पूजा 'वुं बुद्धाय नम:' मन्त्र से की जाती है। इसके बाद पश्चिम आदि चार दिशाओं में अणिमा आदि चार एवं वायव्य आदि कोणों में वशित्व आदि अधोभाग में प्राप्ति और ऊर्ध्वभाग में यत्रकामावसायित्व की पूजा करनी चाहिये। इनकी पूजा का मन्त्र—ह्रीं श्रीं श्रीपादुकां पूजयामि है। दूसरी

पंक्ति में ब्राह्मी आदि माताओं तथा असिताङ्ग आदि आठ भैरवों की एक साथ पूजा होती है । तीसरी पंक्ति में सर्वसंक्षोभिणी के साथ चारों दिशाओं में करशुद्धि-करी संक्षोभकारिणी आदि की अर्चना की जाती है । इनका अर्चन त्रैलोक्यमोहन चक्र में होता है जो कि त्रिपुरसुन्दरी के द्वारा अधिष्ठित है । सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा का बीज 'द्रां' है ।

दूसरे भाग में सोलह नित्याओं की पूजा की जाती है । इस पूजा के माध्यम ब्रह्मा हैं । इनके बाँयें सावित्री दाँयें सरस्वती सामने वेद तथा देवगण रहते हैं । इनका मन्त्र है—ॐ ब्रह्मणे नमः । यहाँ चक्रेश्वरी की पूजा 'ऐं क्लीं सौः' से की जाती है । इन नित्याओं का बीज 'द्रीं' है । तीसरे स्तर पर पञ्चवक्त्र उमामहेश्वर का ध्यान पूजन किया जाता है । सर्वसंक्षोभण चक्र में इनकी इनके आवरण के साथ पूजा की जाती है । मन्त्र—क्लीं शिवाय नमः, ह्रीं उमायै नमः । मुद्रा का बीज—'द्रूं' है । उमा महेश्वर की पूजा के बाद कवर्ग से अनङ्गकुसुमा की पूजा की जाती है । 'चवर्ग' से अनङ्गमेखला, टवर्ग से अनङ्गमदना, तवर्ग के द्वारा अनङ्गमदनातुरा की पूजा करने का विधान है । इसी प्रकार पवर्ग से अनङ्गरेखा, यवर्ग से अनङ्गवेगिनी, शवर्ग से अनङ्गाङ्कुशा तथा ळ क्ष से अनङ्गमालिनी की पूजा कर त्रिपुरसुन्दरी की पूजा करनी चाहिये । कामबीज से आकर्षिणी मुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिये ।

सर्वसौभाग्यप्रद चक्र में सूर्य की पूजा होती है । उनके परिवारों की पूजा चक्रनायिका त्रिपुरा की पूजा के समान करने का विधान है । यहाँ 'ब्लूं' बीज तथा सर्ववश्यकरी मुद्रा का प्रयोग होता है । सर्वार्थसाधक चक्र के बाह्य दशार में विष्णु का ध्यान करने की विधि है । यहाँ पूजा का मन्त्र है—'क्लीं हृषीकेशाय नमः' । बीज 'सः' और मुद्रा उन्मादिनी का प्रयोग करना चाहिये । षष्ठ सर्वरक्षाकर चक्र के अन्तर्दशार में त्रैलोक्यमोहन विष्णु का ध्यान और पूजा होती है । विष्णु के स्वरूप का वर्णन कर उनके वाम पार्श्व में शोभमान शक्ति की भी पूजा साथ-साथ विहित है । यहाँ 'क्लीं' बीज तथा महाङ्कुशा मुद्रा का प्रयोग करने का विधान है । महाङ्कुशा मुद्रा का बीज 'क्रों' है । सप्तम चक्र जो कि अष्टकोणात्मक होता है, में आवरण देवता के रूप में वशिनी आदि रहस्य योगिनियों का पूजन करना चाहिये । चक्रनायिका के बाँयें दाँयें मुक्तिसिद्धि यजन करना चाहिये । बीज 'सः' और मुद्रा खेचरी है ।

मध्य त्रिकोण अर्थात् सर्वसिद्धिप्रद चक्र में कामेश्वरी वज्रेश्वरी और भगमालिनी की पूजा होती है । यहाँ विष्णु ब्रह्मा की संयुक्त रूप से अर्चना होती है । बीज 'ह्सौः' तथा मुद्रा बीजमुद्रा है । सर्वानन्दमय नामक नवम चक्र में ब्रह्मविष्णु शिव रूपिणी त्रिपुरभैरवी की पूजा की जाती है । इनके बाँयें इच्छा ज्ञान क्रिया और

मोक्षसिद्धि रहती है । सामने सिंह रहता है । जो कि देवी के मुख को देखता रहता है । पहले 'ऐं' बीज कहकर योनिमुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिये । निष्कर्ष यह है कि त्रिपुरा, त्रिपुरसुन्दरी, त्रिपुरेश्वरी, त्रिपुरभैरवी, त्रिपुरवासिनी, त्रिपुरश्री, त्रिपुरमालिनी, त्रिपुरसिद्धा, त्रिपुराम्बा आदि नामों से ज्ञेय पराम्बा ब्रह्मस्वरूपिणी का सभी चक्रों में प्रधान देवता के रूप में पूजन होता है । आवरण देवता के रूप में अनेक देव देवियाँ सिद्धियाँ बीज तथा मुद्रायें भी अर्चनीय प्रदर्शनीय होती हैं । सबका पूजन तर्पण करने के साथ-साथ पुष्पाञ्जलि से अन्तिम अभ्यर्चन करना चाहिये ।

अष्टादश पटल—अठारहवें पटल का विषय जप होम भक्ति एवं मुद्रा है । जप के महत्त्व का वर्णन करते हुए कहा गया है कि समस्त यज्ञों में जप यज्ञ अत्यन्त प्रशस्य है क्योंकि जप से देवता सन्तुष्ट होते हैं और सिद्धि मिलती है । अक्षरों का बार-बार अव्यवहित उच्चारण या मन में अव्यवहित स्मरण जप कहलाता है । जप-रूप शक्ति और ध्यानरूप शिव का एक साथ संयोग होने से सिद्धि मिलती है । माला से जप करने का विधान है । सभी प्रकार की मालाओं में वर्णमयी माला सर्वोत्तम होती है । पचास वर्णों के अनुलोम विलोम तथा आठ वर्गों के आठ वर्णों को मिलाकर एक सौ आठ वर्णों की माला बनती है । रुद्राक्ष आदि से निर्मित माला के अभाव में करमाला का प्रयोग करना चाहिये । अनामिका के मध्य से तर्जनी के मूल तक दश अङ्क होते हैं । इन पर जप करना चाहिये । अङ्गुलियाँ सटी होनी चाहिये । छिद्र रहने पर जप अङ्गुलियों से नीचे सरक जाता है । माला की पूजा करने के बाद दाँयें हाथ से माला उठानी चाहिये और 'ऐं माले.......' मन्त्र पढ़कर दाँयें हाथ से माला उठानी चाहिये ।

जप के समय हाथ से माला गिर जाने से विघ्न तथा टूट जाने से मृत्यु होती है । अक्षमाला को जोर से हिलाना या किसी दूसरे को दिखाना नहीं चाहिये । माला को हृदय से लगाकर जपना चाहिये । तर्जनी से माला का स्पर्श नहीं करना चाहिये । बाँयीं जाँघ पर दाँयें पैर को रखकर गुरु देवता एवं मन्त्रों के ऐक्य की मन में भावना करते हुए जप करना चाहिये । जप के वाचिक उपांशु और मानस तीन भेद है । किसी मन्त्र का दश हजार जप उत्तम, एक हजार मध्यम और एक सौ आठ बार जप अधम कोटि का होता है । एक वस्त्र पहन कर या दो से अधिक वस्त्र पहन कर चिन्तायुक्त क्रुद्ध, रुग्ण, क्षुधार्त्त, बोलकर, सोते हुए, चलते हुए, खाते हुए जप नहीं करना चाहिये । मन्त्र जप को देवी के बाँयें हाथ में अर्पित कर देना चाहिये । जप के आदि और अन्त में ओङ्कार रूप सेतु लगाना चाहिये ।

जप करने के बाद संस्कारयुक्त अग्नि में जप का दशांश हवन करना

चाहिये। षडङ्ग से छह आहुतियाँ देने का विधान है । नित्य होम से रहित साधक त्रिविध दु:ख प्राप्त करता है । त्रिपुरभैरवी स्वयं अग्निमयी है । इसलिये होम न करने वाले जापक का वह धन आदि नष्ट कर देती है । पक्षमास वर्ष में कम से कम एक बार अवश्य होम करना चाहिये यदि किसी कारणवश होम न करने की स्थिति हो तो होम की संख्या का दो गुना अधिक जप करना चाहिये ।

होम के बाद स्तुति प्रदक्षिणा प्रणाम करने के बाद भक्तिपूर्वक नैवेद्य को भोग लगाना चाहिये । तत्पश्चात् अनुलेपन, सिन्दूर, नेत्राञ्जन, धूप, दीप, दर्पण, व्यञ्जन, छत्र, चामर, घण्टानाद, वाद्य, गीत, नृत्य एवं क्रीडा का प्रयोग करना चाहिये । पीली सरसों और दीपावलि से निर्मञ्छन कर देवी के शिर पर दूर्वा और अक्षत रखनी चाहिये । अन्त में भक्तिभाव के साथ दास्य एवं आत्मनिवेदन करने का विधान है । ऐसा करने वाला अर्चक सर्वसम्मान्य हो जाता है । आगे चलकर देवी के लिये तत्तद् वस्तु के समर्पण का फल बतलाया गया है ।

देवी के प्रति भक्ति का फल यह है कि वह भक्त सब पापों से रहित पितृमातृ कुल के साथ चिरकाल तक स्वर्ग मे रहता है । प्रारब्ध वश इस लोक में जन्म लेकर वह सार्वभौम नृपति होकर अन्त में कैवल्य पद प्राप्त करता है । आत्मनिवेदन के बाद तर्पण देकर पुन: नवमुद्राओं का देवी के समक्ष प्रदर्शन करना चाहिये ।

अन्त में देवी के सान्निध्य के हेतु बतलाये गये हैं । वे हैं—एकान्तसेवन, आत्मशुद्धि, निर्दोषता, पूजा सामग्री की अधिकता, पवित्रता, सुगन्धयुक्त पदार्थ, अपनी सुन्दर वेषभूषा, काकुवचन, पूजाविधि की निपुणता, एकचित्तता, स्तुति, प्रणाम, जप, बलि इत्यादि ।

उन्नीसवाँ पटल—इस पटल में वटुक योगिनी आदि के मन्त्र बलिदान इत्यादि का वर्णन है । ये वटुक आदि यदि बलि आदि के द्वारा तृप्त नहीं किये जाते तो यज्ञकार्य में विघ्न उपस्थापित करते हैं । इसलिये इन्हें मांस आदि की बलि देकर तृप्त करना चाहिये । श्रीचक्र की चारो विदिशाओं में वटुक योगिनी क्षेत्रपाल और गणपति की पूजा करने की विधि है । वटुक का ध्यान—कमलाक्ष, स्वर्णगौर, चतुर्भुज, हाथों में शङ्ख चक्र गदा पद्म धारण किये हुए विष्णुरूप में करना चाहिये । वटुक की पूजा का मन्त्र है—क्लौं वटुकाय नम: । बलिदान का मन्त्र भी इस प्रकार है—एह्येहि देवीपुत्र वटुकनाथ कपिलजटाभार भास्वरत्रिनेत्र ज्वालामुख सर्वविघ्नान् नाशय नाशय सर्वोपचारसहित बलिं गृह्ण स्वाहा । ऐसा करने वाला भाग्यहीन अर्चक भी सर्वसम्पत्-समन्वित होकर निर्विघ्न जीवन यापन करता है ।

त्रिपुरा देवी के बाँयें ओर मण्डल में योगिनी का ध्यान और बलिदान करना चाहिये । योगिनियाँ कामरूपी, तप्तकाञ्चन के समान देदीप्यमान, मदमत्त, कङ्काल की माला धारण की हुई, पृथुकटिवाली, गिरते हुए रक्त की गन्ध से पूरित, रक्तवस्त्र धारण की हुई, हाथों में लिङ्ग पाश कपाल और सृणि ली हुई हैं—ऐसा ध्यान करना चाहिये । इसके लिये बाँयें अङ्गूठे एवं अनामिका से बलि देनी चाहिये । मन्त्र है—यां योगिनीभ्य: सर्ववर्णयोगिनीभ्य: हुं फट् स्वाहा । इसके पश्चात् 'ऊर्ध्व............वीरेन्द्रवन्द्या:' श्लोक के द्वारा इनकी प्रार्थना करनी चाहिये ।

देवी के वामभाग में क्षेत्रपाल का ध्यान करने का विधान है । इनका ध्यान इस रूप में करणीय है—ये अपराजिता की लता से वेष्टित हैं । तिन्तिडी कल्पवृक्ष की छाया के नीचे रत्नभूषित रक्तकुसुमाच्छादित भूमि पर विराजमान हैं । नीलाञ्जन के समान शरीर वाले ये हाथों में कृपाण कपाल शूल और डमरु लिये हुए हैं । दाँतों से अधर को दबाये हुए हैं । इनके बलिदान का मन्त्र है—क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्ष: क्षेत्रपाल धूपदीपादिसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा ।

देवी के सामने दाँयीं ओर गणेश का ध्यान करने की विधि है । ये नवीन बादल के समान श्याम, सर्वाभरणभूषित, तोंद वाले, हाथी के मुखवाले, चतुर्भुज और नग्न हैं । वाम दक्ष ऊर्ध्व हाथों में पाश तथा अङ्कुश, नीचे के दाँयें हाथ में मद्यपूर्ण कपाल तथा बायें हाथ से सिन्दूर सदृश आकार वाली ऋद्धि के भग का स्पर्श किये हुए हैं और ऋद्धि उनके लिङ्ग को पकड़ी हुई है । उनका मन्त्र है—गां गीं गूं गणपतये वरवरद सर्वजनं में वशमानय बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा । इनको गजतुण्डा मुद्रा दिखाकर बलि देनी चाहिये । इसके बाद सर्वभूत बलि देने की बात कही गयी है ।

देवता मनुष्य पितृगण यक्ष राक्षस पिशाच इनको भूत कहा गया है । बलि से तर्पित ये सब यक्ष के सहायक हो जाते हैं । तर्पित न होने पर यज्ञ में विघ्न उपस्थापित करते हैं । बलिदान के पश्चात् स्वयं तथा अपने द्वारा की गयी समस्त क्रियाओं को देवी के लिये समर्पित करना चाहिये । समर्पण के पश्चात् 'आवाहनं ....त्वदाज्ञया' मन्त्रों से देवी को प्रसन्न करना चाहिये । इसके बाद समस्त देवतायें त्रिपुरा के शरीर में विलीन हो गयीं ऐसी भावना करनी चाहिये । फिर अपने को कामकलारूप वाला समझते हुए परमेश्वरी त्रिपुरसुन्दरी को अपने हृदय में विसर्जित करना चाहिये अर्थात् हृदय में स्थापित कर लेना चाहिये । निर्माल्य को भूमि पर फेंककर शिव के साथ स्वयं के ऐक्य की भावना करते हुए शेषिका देवी की निर्माल्य से पूजा करनी चाहिये ।

बीसवाँ पटल—शेषिका देवी का दूसरा नाम उच्छिष्टमातङ्गी है । इस पटल में उच्छिष्टमातङ्गी की पूजा का वर्णन है । इस देवी का ज्ञान होने पर आपत्तियाँ

नष्ट हो जाती है। इसके मन्त्र का जप करने से स्थावर जङ्गम कृत्रिम अङ्ग अङ्गज विषों का शमन होता है। यह विद्या स्वर्ग और मोक्ष देने वाली है। इस विद्या का जप जूठे मुख किया जाता है। वह जप ही मुखशुद्धि का आचमन है। इसके बाद उच्छिष्टमातङ्गी मन्त्र का उद्धार बतलाया गया है। मन्त्र है— १. उच्छिष्टचाण्डालिनी सुमुखि देवि महापिशाचिनि ह्रीं ठः ठः। २. ऐं ह्रीं श्रीं नमो भगवति मातङ्गेश्वरि सर्वजनवशङ्करि स्वाहा। इसका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—यह शव पर बैठी हुई, रक्त वस्त्र धारण की हुई, रक्त वर्ण के आभूषण पहनी हुई, यौवनसम्पन्न, पीन उन्मत पयोधरों वाली, हाथ में कपाल तथा कैंची ली हुई है। इसके मन्त्र का जप जूठे मुँह करने का विधान है। जप के बाद होम और होम के बाद बलि देनी चाहिये। हवनीय द्रव्यों में बिल्ली का मांस, मधुमिश्रित अजा मांस, से क्रमशः शस्त्र, शास्त्र, वशीकरण तथा यथेच्छ फल की प्राप्ति होती है। विद्याकामी मधु और घी से होम करे। घी, मधु, चाण्डाल के बाल को मार्जार मांस में मिलाकर हवन करने से आकर्षण होता है। खरगोश के मांस को मधु के साथ हवन करने पर विद्या धन और सुन्दर स्त्री मिलती है। इसी प्रकार विविध होम के द्वारा विविध लक्ष्य के प्राप्ति का वर्णन इस पटल में किया गया है। भिन्न-भिन्न उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार के उपाय बतलाये गये हैं। उदाहरण के लिये पुष्यनक्षत्र में अपामार्ग की जड़ का शरीर में लेप करने से शरीर के ऊपर किया गया प्रहार व्यर्थ हो जाता है। इसी प्रकार अनेक उपचारों के द्वारा अनेक विषयों की उपलब्धि होती है।

इक्कीसवाँ पटल—पूजा के क्रम में मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए शङ्खस्थ जल को शिर से लगाना चाहिये। उसकी एक भी बूँद भूमि पर गिरने पर ब्रह्महत्या का दोष लगता है। देवी के चरणोदक का पान करना चाहिये एवं सम्पूर्ण शरीर में उसका लेप करना चाहिये। पूजा सामग्री को माया बीज से देखते हुए जहाँ-जहाँ पात्र रखा गया है उस-उस स्थान से पात्र को हटाकर जल छिड़कना तथा झाड़ू लगाना चाहिये। अच्छिद्र प्रार्थना के बाद सूर्य को प्रणाम करना चाहिये। नैवेद्य आदि समस्त पदार्थों को गुरु एवं गुरु शक्ति को दे देना चाहिये। देवता को भोग लगाने के बाद वह नैवेद्य अमृत हो जाता है। उसे अमृत समझकर खाने वाला देवगामी हो जाता है। तीन तत्त्व से तीन बार आचमन कर षडङ्गन्यास करना चाहिये। सर्वत्र दाता भोक्ता आदि के रूप में शिव को तथा अलंकृत स्त्रियों को देवता समझना चाहिये। इस प्रकार देवी त्रिपुरसुन्दरी की आराधना कर उसकी भावना से युक्त होकर पृथिवी पर स्वच्छन्द विचरण करना चाहिए।

आगे चलकर परतत्त्व के ज्ञान की विधि आदि की चर्चा के क्रम में कहा गया है कि शिवस्वरूप परब्रह्म अनुत्तर है। यह स्वप्रकाश है। वेदोक्त रीति से

इस तत्त्व का बार-बार दर्शनाभ्यास करना चाहिये। परतत्त्व का ज्ञान हो जाने पर कोई क्रिया नहीं करनी पड़ती। परतत्त्व का ज्ञाता आस्तिक कहा जाता है और वह मुक्त होता है। यन्त्र को देवी का शरीर कहा गया है (अथवा अपने शरीर को देवी का यन्त्र कहा गया है) इसमें अहंभाव से स्थित होकर भक्तिपूर्वक यजन करना चाहिये। देवी की कृपा से विज्ञानवान् होने के पश्चात् 'मैं पूर्ण हो गया हूँ' इस भावना से सम्पन्न होकर पृथिवी तल पर उसकी इच्छानुसार विहरण करना चाहिये।

आगे चलकर पर तत्त्वज्ञान की विधि और उसके माहात्म्य का वर्णन किया गया। इस क्रम में कहा गया है कि जब तक चिन्मय आत्मतत्त्व में मन का लय न हो जाय तब तक इष्ट मन्त्र का जप तथा होम करना चाहिये। जब परमतत्त्व का ज्ञान हो जाय तक समस्त नियमों का त्याग कर देना चाहिए। साथ ही जिस मन से त्याग किया जाता है उस मन का भी त्याग करना चाहिये। उभयत्यागी ही वास्तविक संन्यासी होता है। पराम्बा को अपने से अभिन्न समझते हुए जो साधक उसकी पूजा करता है उसके पञ्चतत्त्वात्मक शरीर में ही वह प्रत्यक्ष दिखलायी पड़ती है। उस का अनुमान भी अपने अन्दर ही होता है बाहर नहीं।

अन्त में यह बतलाया गया है कि देवतागण वस्तुओं की गन्ध तथा सुन्दर रूप से ही सन्तुष्ट एवं प्रसन्न होते हैं। भूत प्रेत मनुष्य और अन्य जीव जन्तु वस्तुओं के उपयोग से तुष्ट होते हैं। देवता लोग वस्तुओं का उपभोग गुरु, कुमारी, ब्राह्मण तथा गौ के शरीर के माध्यम से करते हैं इसलिये उनको भोजन कराने से ही यज्ञ पूर्ण होता है।

बाईसवाँ पटल—इस पटल का विषय समयाचार है। प्रारम्भ में बतलाया गया कि हृदयस्थ परमात्मा का अनुभव होने पर ही सिद्धि मिलती है। परमात्मा को हृदय में स्थापित कर अमृत से उनकी पूजा करनी चाहिये। ब्रह्मा विष्णु और शिव से अपने तादात्म्य का अनुभव करना ही अन्तिम प्राप्य होता है। इसके लिये नित्य नैमित्तिक एवं काम्य इन तीन प्रकार के कर्मों को करना चाहिये। इन कर्मों को करने से मनुष्य की तीनों तृष्णायें (= वित्तैषणा, पुत्रैषणा, लोकैषणा) शान्त हो जाती हैं और साधक तृप्त होकर समस्त क्रियायें त्रिपुरा की प्रसन्नता के लिये करने लगता है। माता-पिता को शिव और शक्ति समझकर उनकी भी सेवा करनी चाहिये। गुरु की सेवा भी अनिवार्य है भाईबन्धु पितृगण को भी दान एवं कर्म से प्रसन्न रखना चाहिये। इनका बलि के द्वारा तर्पण करना चाहिये। विना इन सबकी अर्चना के माता त्रिपुरसुन्दरी पूजा स्वीकार नहीं करती एवं योगक्षेम भी नहीं होता।

राजा का कर्त्तव्य है कि वह प्रजा की विधिवत् पुत्र के समान रक्षा एवं लालन-पालन करे । दण्डनीय को दण्ड शास्त्र के अनुसार देना चाहिये । शास्त्रवर्णित कर्म के अनुष्ठान से साधक के समक्ष अणिमादि विभूतियाँ प्रकट होती हैं । ऐसा होने पर उन विभूतियों को देवी को समर्पित कर देना चाहिये । केवल परब्रह्मरूपा त्रिपुरसुन्दरी का ध्यान करना चाहिये । आगे चलकर योगी की चतुष्कालिक उपासना का वर्णन किया गया है कि साधक प्रातः मध्याह्न सायं एवं मध्यरात्रि में किस प्रकार देवी की उपासना करे । सूर्यचन्द्र शिवशक्ति है, दिवारात्रि शिवशक्ति हैं, पिता माता शिवशक्ति हैं । इनको एककर ध्यान करना ही इनकी चतुर्विध उपासना है । पञ्चवक्त्र शिव की गोद में हंसती हुई देवी की स्थिति एवं तद्रूपता का ध्यान ही मङ्गलकारी होता है । देवी की पूजा शुक्लद्रव्यों एवं शुक्लवेषों से करनी चाहिये । चोष्य लेह्य पेय चर्व्य भक्ष्य पदार्थों का भोग लगाना चाहिये ।

इसके पश्चात् प्रातः तथा मध्याह्न कालिक, सायं एवं अर्धरात्रिकालिक यजनों का वर्णन विहित है । प्रातःकाल शुक्ल उपचारों एवं सायङ्काल में रक्त उपचारों से पूजा करनी चाहिये । जब देवी शिव को नीचे कर विपरीत रति में रहती है तब विश्व की रात्रिकालीन अवस्था होती है । उस समय की पूजा महाफला होती है । इसके आगे पूजा में विहित एवं निषिद्ध कर्मों की चर्चा की गयी है । ध्यान पूजा जप होम न्यास तर्पण ये सब परम मङ्गलकारी है । सन्ध्या काल में केवल एक बूँद जल तथा गुरु को प्रणाम महाफलदायक होता है । काम क्रोध आदि समस्त दुर्गुणों का त्याग कर नित्य पुरश्चरण करने वाले उपासक के अन्दर देवी का आवेश हो जाता है । देवता लोग भी उसका सहवास चाहते हैं ।

तीन याम देवी का निद्राकाल होता है । इसमें साधक निद्रा के द्वारा उसकी उपासना करे । देवी के प्रबोध काल में जो निद्रा करता है उसकी आयु विद्या यश और बल नष्ट हो जाते हैं । जो साधक चार तीन या दो सन्ध्याओं में योगयुक्त होकर ब्रह्मचर्य के साथ देवी-मन्त्र का एक वर्ष तक जप करता है वह समस्त सिद्धियों को प्राप्त कर लेता है । ईश्वर ने अन्त में कहा कि मैं भी व्रत-पूर्वक इस मन्त्र का जप करता रहता हूँ । यह परमरहस्य और पर-अप्रकाश्य है ।

तेईसवाँ पटल—इस पटल में कुमारी-पूजन का वर्णन है । किसी भी अनुष्ठान में किया गया होम आदि तभी पूर्णता को प्राप्त होता है जब अन्त में कुमारी पूजन कर दिया जाता है । ब्रह्मा विष्णु रुद्र से लेकर सारे स्थावर जङ्गम जीव जन्तु कुमारी पूजा से तृप्त होते हैं ।

यदि अनेक कुमारियाँ उपलब्ध न हो तो एक ही कुमारी की पूजा से पूर्णफल मिलता है किन्तु वह कुमारी पाँच से आठवर्ष के मध्य की तथा प्रमदा

युवति सुन्दरी होनी चाहिये । कुमारी के लिये जो अन्न जल दिया जाता है वह अक्षय्य होता है । कुमारी की पूजा कुमारीमन्त्र से करने का विधान है । पूजित होने के पश्चात् प्रसन्न होकर कुमारी जो-जो कहती हैं वह सब सत्य हो जाता है । इस पूजाक्रम मे कुमारी की जाति का विचार नहीं करना चाहिये । वह ब्राह्मणी या नापिता वेश्या कोई भी, हो पूजनीय होती है ।

पूजा के क्रम में आसन स्वागत पाद्य अर्घ्य आचमन आदि का देववत् अर्पण होता है । पूजन के समय कुमारी की स्तुति करने का विधान है । इसमें विघ्न को दूर करने और मन्त्रसिद्धि प्रदान करने की बात बार-बार कही जाती है। भोजनोत्तर आचमन ताम्बूल आदि देने का विधान है ।

जो कुमारी स्वयं ऋतुमती हो उसके आद्य रज को लेकर उसमें गोरोचन, कर्पूर, केसर, कस्तूरी और अगुरु मिलाकर उससे देवी की पूजा करनी चाहिये । देवी का प्रत्यक्ष दर्शन करने के लिये मांस, मद्य, मुद्रा, शक्ति और आद्यरज ही साधन है ।

चौबीसवाँ पटल—उक्त विधि के अनुसार जो कुमारी पूजा करता है उसके माता पिता धन्य होते हैं । वह अग्नि, बृहस्पति आदि के समान अतुल्य, अद्भुत दैवी शक्ति से सम्पन्न हो जाता है । उसके शरीर में सारे तीर्थ निवास करते हैं । यदि त्रिपुरसुन्दरी की पूजा में एक दिन का भी व्यवधान हो जाय तो प्रायश्चित्त करना चाहिये । कई दिनों का व्यवधान होने पर पूजक योगिनी के शाप का पात्र होता है और उसके आर्युविद्या यश और बल नष्ट हो जाते हैं तथा इष्टसिद्धि नहीं होती ।

देवी का अर्चक जन्मान्तर में चक्रवर्त्ती राजा होता है तथा इस जन्म में देवी का परम भक्त होकर कैवल्य प्राप्त करता है । देवी की पूजा में साधक यदि स्वयं समर्थ न हो तो गुरु को नियुक्त करे । देवी की पूजा नित्य अवश्य करनी चाहिये । देवी की नैमित्तिक और काम्य पूजा भी की जा सकती है । आवरण देवताओं की भी फल पुष्प से पूजा करनी चाहिये । देवी का यज्ञमय शरीर इस प्रकार है—ध्यान पूजा जप होम चारों हाथ हैं । न्याससमूह—शरीर, देवी का ज्ञान—आत्मा, भक्ति—शिर, श्रद्धा—हृदय, कौशल—नेत्र माना गया है । यज्ञ-पुरुष सर्वाङ्गपूर्ण होने पर ही फल देता है । अङ्ग की हीनता अथवा आधिक्य दोनों पापदायक है ।

समय और स्थान की चर्चा करते हुए कहा गया है कि कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी और मङ्गलवार साथ हों तो यह महाभूत दिन कहलाता है । यदि इसी दिन पुष्य नक्षत्र हो तो यह मुहूर्त्त अनन्त फलप्रद होता है । श्मशान में शव के ऊपर बैठकर पूजा की जा सकती है । अपने घर के अन्दर, बाहर, नदी-नद का

तट, कामरूप जालन्धर आदि पवित्र पीठ, शिवालय, शिवक्षेत्र, शिवलिङ्ग के समीप, विष्णुक्षेत्र, विष्णु का मन्दिर, विष्णुपीठ ये सब साधना के उत्तम स्थल हैं।

पचीसवाँ पटल—अनुष्ठान के लिये पवित्र क्षेत्रों के वर्णन क्रम में कहा गया है—नदी तीर, पर्वत की गुफा, पर्वत की चोटी, तीर्थस्थान, नदियों के सङ्गम, पवित्र वन, वेल का मूल, पर्वत के पास की भूमि, तुलसी का वन, वृक्षशून्य गोशाला, शिवालय, पीपल आँवला के नीचे की भूमि, गोशाला, जल के मध्य की भूमि, देवालय, समुद्र का तट, अपना घर ये सब पुण्य स्थान है । वाराणसी में की गयी पूजा पूर्णफल देती है । उससे दो गुना फल द्वारिका में की गयी पूजा से मिलता है । प्रयाग पुष्कर नन्दिकुण्ड आदि में गुणित फल मिलता है । कामाख्या योनिमण्डल में की गयी पूजा सबसे अधिक फल देती है ।

साधक को अशौच दोष नहीं लगता । गन्ध पुष्प धूप दीप नैवेद्य से पूजा करनी चाहिये । चक्रदेवता की पूजा पुष्पाञ्जलि से करनी चाहिये । कुमारी भोजन भी आवश्यक होता है । अपने हृदय के अन्दर देवी की पूजा सर्वोत्कृष्ट होती है। इसमें अपने शरीर को ही अलंकृत करना, मन्द मुस्कानयुक्त होना, सुमधुर भोजन करना, सुखदुःख में समभाव रहना इत्यादि कृत्य विहित हैं । किसी सङ्कट की स्थिति में मानस पूजा का त्याग नहीं करना चाहिये ।

मनुष्य लोक में भारतवर्ष श्रेष्ठ है । वहाँ के लोग पुण्यवान् और ज्ञानी हैं । अन्य देशों के लोग जो पशुवत् जीवनयापन करते हैं वे मरने के बाद प्रेतलोक में जाते हैं । इसी प्रकार भक्ष्याभक्ष्य का विचार न कर धनचिन्तापरायण लोग निशाचरलोकवासी होते हैं । जो लोग केवल शिश्न और उदर के सुख में लगे रहते हैं वे यक्ष लोक में जाते हैं । आचारवान् पुरुष पितृलोक में निवास करते हैं। जो मनुष्य गङ्गा के आसपास भारत के मध्य देश में रहते हैं, दान-भोगपरायण, श्रुति स्मृति के अनुसार आचरण करने वाले हैं वे लोग देवलोक को प्राप्त होते हैं । देवी के त्रैगुण्यहारी पीठ पर जो योगी भोगयुक्त होकर भी देवी के साथ तादात्म्य भाव से अर्चन पूजन करता है वह देवी की कृपा से निस्त्रैगुण्यवान् हो जाता है ।

छब्बीसवाँ पटल—इस पटल में दीक्षा, सद्गुरु, सत् शिष्य के लक्षण आदि का वर्णन है । दीक्षा उसे कहते हैं जो १. दिव्य ज्ञान दे और २. पाप का क्षय करे । भगवान् शिव दक्षिणामूर्त्ति के रूप में प्रथम गुरु हुए । इन्होंने तीन शिष्यों प्रकाश विमर्श और आनन्द की रचना की । ये तीन गुरु दिव्यौघ कहलाये। इनसे तीन और उनसे भी तीन उत्पन्न हुए । इस प्रकार नव गुरु मण्डली बनायी गयी।

गुरु का लक्षण बतलाते हुए कहा गया कि उसे सुन्दर शान्त दान्त निर्लोभी तथा अनेक गुणों से युक्त होना चाहिये । ऐसा ही गुरु शिष्य का कल्याण करता

है । इसके विपरीत गुणों वाला दुःखदायी होता है । शिष्य को भी विशुद्ध शरीर मुख वाला, परनिन्दा विमुख, दयावान्, अलुब्ध, तथा अन्य श्रेष्ठगुणों से युक्त होना चाहिये । गुरु-मन्त्र-देवता में दृढ़ भक्ति वाला शिष्य गुरु को सुख देता है । शुभ मुहूर्त्त में शिष्य गुरु के पास जाय और उनकी आज्ञा से उनके समीप बैठकर उनकी सेवा करे । गुरु के साथ ऋण का आदान-प्रदान क्रय-विक्रय नहीं करना चाहिये । उनकी छाया आदि का लङ्घन नहीं करना चाहिये ।

गुरु को चाहिये कि वह एक वर्ष तक शिष्य को अपने पास रखे और उसके बाद परीक्षा कर उसे दीक्षा दे । जहाँ तक दीक्षाकाल का प्रश्न है शरत्काल एवं वैशाख मास श्रेष्ठ हैं । फाल्गुन अगहन और ज्येष्ठ मध्यम तथा शेष मास अधम हैं । शुद्ध उत्तम काल में ही दीक्षा देनी चाहिये । दीक्षा तीन प्रकार की होती है—१. मान्त्री—जो मन्त्र पूजन ध्यान योग आदि के द्वारा की जाय वह मान्त्री दीक्षा होती है । २. सिद्ध पुरुष अपनी शक्ति को देखकर उसके द्वारा शिशु को जो दीक्षा देता है वह शाक्ती दीक्षा होती है । ३. आचार्य शिष्य की अभिसन्धि के विना गुरु केवल कृपाकर जो दीक्षा देता है वह शाम्भवी दीक्षा कही जाती है ।

आगे चलकर अधिवास-विधि, वास्तु देवता के लिये बलि तथा क्षेत्रपाल बलि की चर्चा की गयी है । मण्डप-निर्माण के सन्दर्भ में कहा गया कि उसमें सुन्दर वेदी पताका ध्वजा आदि रहने चाहिये । कदलीस्तम्भ आदि से सुशोभित उस मण्डप, चक्रराज तथा दीक्ष्य वटु का पञ्चगव्य से अभिमन्त्रण करना चाहिये । इससे सकल पदार्थ की शुद्धि तथा पापों का नाश होता है । तत्पश्चात् स्नान के द्वारा शुद्ध होकर शिशु यज्ञ करे । होम के बाद स्वप्नमात्र का उच्चारण करते हुए गुरु शिष्य को पूर्व शिर कर सुलाये । प्रात:काल उठकर शिष्य स्वप्न की चर्चा गुरु से करे । अशुभ स्वप्न होने पर मूलमन्त्र से अग्नि में एक सौ आहुतियाँ देनी चाहिये ।

सत्ताईसवाँ प्रटल—इस पटल का विषय मण्डप-प्रवेश, होम, पञ्चमकार, शिष्य पाश दहन, पादुका इत्यादि है । शिष्य को चाहिये कि वह आचार्य एवं ब्राह्मणों का वरण कर नारी तथा ब्राह्मणों के साथ जयघोष करते हुए मण्डप में प्रवेश करे । वहाँ कलश का पूजन कर उसमें वह्नि सोम और सूर्य की उनकी कलाओं के साथ पूजा करे । आँख बन्द कर हाथ की अञ्जलि में पुष्प लेकर फेंके । पश्चिम उत्तर पूर्व और ईशान कोण में फूलों का गिरना शुभ और अन्य दिशाओं में गिरना अशुभ माना जाता है । अशुभ दिशा में पुष्पपात होने पर होम करना चाहिये । इसके बाद अङ्गों एवं आवरण देवताओं की पूजा कर होम करने के बाद त्रिपुरसुन्दरी के लिये त्रिमधु से हवन करे । मन्द अग्नि में हवन नहीं करना चाहिये । ऐसा करने पर रोग या मृत्यु होती है । धूमाकुल अग्नि में हवन

करने पर यजमान अन्धा होता है और पुत्र आदि के सहित नष्ट हो जाता है ।

होम के अनन्तर शिष्य का मुख ढँककर देवी से प्रार्थना करनी चाहिये कि इस दीन शिष्य के ऊपर दया करो । इसके पश्चात् गुरु शिष्य को सिद्धान्त सुनाये। इसके पश्चात् अन्तरात्मा के स्वरूप का निरूपण करे । यही पुरुषार्थ है । गुरु के सम्प्रदाय का ज्ञान सिद्धि देता है । गुरु के वाक्यों में विश्वास से सर्वसिद्धि मिलती है । गुरु मन्त्र देवता मन और प्राण की ऐक्य भावना से अन्तरात्मा का ज्ञान होता है । पञ्चमकार का सेवन ब्रह्म का अभिव्यञ्जक है क्योंकि ब्रह्म आनन्दरूप है और वह उनके सेवन से प्राप्त होता है ।

इसके पश्चात् इस पटल में निषिद्ध कर्मों का वर्णन किया गया है । किसी भी सम्प्रदाय की निन्दा नहीं करनी चाहिये । काम क्रोध लोभ तथा लोकनिन्दित कोई भी कार्य नहीं करना चाहिये । फलरहित कर्म नहीं करना चाहिये । शिव को अग्नि समझकर उसमें अपनी आहुति देनी चाहिये । वेद आदि समस्त शास्त्र वेश्या के समान हैं केवल आत्मविद्या ही वरेण्य है । उसी की दीक्षा देनी चाहिये। गुरु को यह भावना करनी चाहिये कि शिष्य के शिर पर शिवशक्ति के चरणों से गिरे अमृत से शिष्य का मांसबृंहित शरीर धुल गया है । फिर मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक जलती हुई अग्नि के समान उष्ण एवं करोड़ों सूर्य के समान दीप्यमान कुण्डलिनी शक्ति के द्वारा शिष्य के पापरूपी पाश को जला देना चाहिये । एतदनन्तर गुरु शिष्य से कहे कि वह स्वयं शिव हो गया है—ऐसी भावना करे । तत्पश्चात् स्वयं शिव होकर सन्देहहीन होता हुआ गुरु शिष्य के शिर का शिवहस्त से स्पर्श करे एवं अपनी आत्मा से शिष्य की आत्मा का संयोजन कर दे । वर्णात्मक चौकोर यन्त्रराज पर शिष्य को बैठाकर कलश से मूलमन्त्र का उच्चारण करता हुआ गुरु शिष्य को स्नान कराये । इसके पश्चात् उसे अलंकृत कर अपने पास बैठाये । उसके अङ्गों में मातृकान्यास कर विद्याङ्गन्यास करे । शिष्य के मुख से वस्त्र हटाकर तत्त्वमन्त्र का उच्चारण करता हुआ ग्रासमुद्रा से उसे भोजन कराये ।

गुरु बालाबीज से युक्त पादुका को शिष्य को दे दे । यह बालामन्त्र शिष्य के दाँयें कान में सुनाये । अपने पैर को शिष्य के शिर पर रखकर मन्त्रों को एक या अनेक बार सुनाये । शिष्य के हाथ से अपने अङ्गों का स्पर्श कराने के बाद शिष्य का नामकरण करे । 'आनन्दनाथ' के पहले दो तीन या चार अक्षर जोड़ना चाहिये । इसके बाद आचार का उपदेश देकर हृदयस्थ चैतन्य का स्पर्श करे । शिष्य का आलिङ्गन कर शिष्य को पूर्ण तथा आत्मरूप समझे । अपनी शक्ति के क्षय की पूर्त्ति के लिये गुरु एक हजार आठ बार मूल मन्त्र का जप करे ।

तत्पश्चात् शिष्य कृपणतारहित होकर गुरु को सर्वस्व समर्पित कर दे । गुरु

की स्तुति करने के बाद गुरु शिष्य को आशीर्वाद दे कि हे पुत्र! परादेवी भोग और मोक्ष दोनों को देती है इसलिये तुम तन्मनस्क हो जाओ । तुम्हारे अन्दर द्वैत भाव न हो । पैर पर पड़े शिष्य को दोनों हाथों से उठाकर गुरु उसे आशीर्वाद दे कि मैं प्रसन्न हूँ मेरे आशीर्वाद से तुम्हें सब सिद्धियाँ सुलभ हों । उक्त अनुष्ठान के बाद शिष्य कुमारी ब्राह्मण दीन अन्धे कृपण आदि को भोजन कराये । उनसे भी आशीर्वाद लेकर जाति बन्धुओं को पुष्प माला भोजन आदि से तृप्त करने के बाद वह सर्वमन्त्र का अधिकारी बन जाता है ।

अट्ठाईसवाँ पटल—इस पटल में त्रिपुरसुन्दरी की पुरश्चरण-विधि का वर्णन किया गया है । गुरु की आज्ञा लेकर उसके बाद अपने को देवीमय समझते हुए एक हजार आठ या पचार हजार जप करने के बाद पुरश्चरण करना चाहिये । गुरु की आज्ञा लेना अनिवार्य है । किसी भी मन्त्र की सिद्धि में तीन प्रतिबन्धक होते हैं—१. आलस्य, २. अश्रद्धा और ३. पूर्वजन्मकृत पाप । तीनों को दूर करने के लिये पुरश्चरण आवश्यक होता है । यह कार्य गुरु से करवाना चाहिये । गुरु के अभाव में आचारवान् ब्राह्मण को नियुक्त करना चाहिये ।

पुरश्चरण के लिये किसी पवित्र क्षेत्र का चयन कर चतुर्दशी अष्टमी या अमावस्या के दिन इसका प्रारम्भ करना चाहिये । जिस ग्राम नगर या देश में पूजा होनी है वहाँ दीपस्थान का विचार कर कूर्मचक्र की रचना करनी चाहिये । फिर उस चक्र में दीप स्थान का निर्णय कर जप पूजा का आरम्भ करना चाहिये। प्रणव अक्षमाला और मायाबीज ये तीन अमृत है । इन तीनों के योग से दुष्टमन्त्र भी सिद्ध हो जाता हैं । वर्णमाला के अतिरिक्त अन्य वस्तुओं की माला भिन्न-भिन्न लक्ष्य की सिद्धि देती है जैसे—वाक्सिद्धि मोक्ष के लिये मोती की, वशीकरण के लिये मूँगा की, भोग मोक्ष तथा अनन्त फल के लिये रुद्राक्ष, मारण उच्चाटन आदि में खोपड़ी की माला प्रशस्य होती है । एक प्रकार की माला से जप का प्रारम्भ करने पर बीच में दूसरी माला से जप नहीं करना चाहिये ।

अनुष्ठान काल में दही दूध घी आदि विहित अन्न ग्रहण करना चाहिये । उड़द गुड तेल मांस गाजर आदि निषिद्ध पदार्थों का सेवन वर्जित है । रात्रि में जप नहीं करना चाहिये । भूमिशयन, ब्रह्मचर्य, मौन, अनसूया के नियमों, नित्यपूजा, नित्यदान आदि बारह नियमों का पालन मन्त्रसिद्धि प्रदान करता है । स्त्री शूद्र पतित से बातचीत, असत्य कुटिल वचन वर्जित है । जप होम पूजन के समय सभ्य लोगों से भी भाषण न करे । गीत नृत्य अनुलेप प्राणिहिंसा असङ्कल्पित कार्य, उष्णोदकस्नान क्षौर देवता को अनिवेदित भोजन का त्याग करना चाहिये । शिवाङ्ग को बाहर भीतर पञ्चगव्य से धोना चाहिये । स्नान भी पञ्चगव्य से करना चाहिये ।

अशुद्ध हाथ, नग्न, शिर ढँककर, आसनरहित होकर, चलते, खड़े होकर, अपवित्र स्थान में, प्रकाशरहित स्थान में, बात करते हुए जप का फल नहीं मिलता। एक बार मन्त्र से भिन्न शब्द का उच्चारण करने पर 'ॐ' कहकर जप करना चाहिये। छीङ्क जम्भाई, हवा खुलने, खाँसी इत्यादि आने पर जप रोककर आचमन करे फिर जप करे। प्रतिदिन शय्या को धुले। एकाकी शयन करे। देवता गुरु मन्त्र के ऐक्य को मन में सोचते हुए न बहुत विलम्ब और न बहुत शीघ्रता के साथ जप करे। जितनी संख्या का जप प्रथम दिन हुआ उतनी ही संख्या में नित्य जप करना चाहिये। न्यूनाधिक जप दोषाधायक होता है। दिन का लङ्घन नहीं करना चाहिये अन्यथा सिद्धि नहीं मिलती।

जप की संख्या पूर्ण होने पर आँख में पानी लगाना चाहिये। केवल गुरु को प्रणाम करना चाहिये। त्रिकाल स्नान, सत्सङ्ग, देवता को साष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहिये। जितना जप किया गया है उसका दशांश हवन सुविहित कुण्ड एवं सुसंस्कृत अग्नि में करने का विधान है। होम न कर सकने की स्थिति में होम की संख्या का दोगुना मन्त्र-जप करने की विधि है। यह हवन प्रतिदिन या केवल अन्तिम दिन किया जा सकता है। हवन का दशांश तर्पण और तर्पण का दशांश मार्जन करना चाहिये। मार्जन का दशांश ब्राह्मण भोजना कराना चाहिये। इसके पश्चात् अभिषेक अघमर्षण सूर्यार्घ्य जलपान और प्राणायाम में पाँच कृत्य और करने पड़ते हैं। गुरु को सब प्रकार से सन्तुष्ट करना चाहिये। ब्राह्मण भोजन अत्यावश्यक अङ्ग है। इसके विना सब निष्फल हो जाता है।

उन्तीसवाँ पटल—प्रस्तुत पटल में मन्त्रसिद्धि और उसके अनेक प्रकार के अर्थों की चर्चा की गयी है। कौल-परम्परा के अनुसार अपने शरीर को यथाशक्ति अलंकृत कर साथ में रहने वाली शक्ति को भी उसी प्रकार आभूषण आदि से सुसज्जित कर ताम्बूलपूरित मुख होकर मध्य रात्रि में जप करना चाहिये। मूलाधार हृदय त्रिकोण और शिर के त्रिकोण क्रमशः स्वयम्भू बाण एवं इतर लिङ्ग कहे जाते हैं। इनमें एक-एक लाख जप करने का नियम है। ऐसा करने पर जापक देववत् हो जाता है। इसके पश्चात् नवलाख जप करना होता है। इससे सिद्धियाँ मिलती हैं। एक करोड़ जप होने पर मन मन्त्रमय हो जाता है। ऐसा होने पर ध्यान का ब्रह्मार्पण होने के बाद साधक सर्वज्ञ हो जाता है।

जप के नव स्थान हैं—१. मूलाधार, २. मेढ्र (= लिङ्ग), ३. नाभि, ४. हृदय, ५. कण्ठ, ६. भ्रूमध्य, ७. भ्रूमध्य के ऊपर, ८. लम्बिका और ९. लम्बिकोर्ध्व भाग (= सहस्रार)। इन नव स्थानों में भिन्न-भिन्न रूप एवं प्रभा वाले लिङ्ग का ध्यान करते हुए इन नव स्थानों का भेदन करने के बाद पुनः कुण्डलिनी को मूलाधार में ले आना चाहिये। वहाँ त्रिपुरसुन्दरी मन्त्र का नव लाख जप करने पर साधक दूसरा शिव हो जाता है। मन्त्र का जप मन्त्र को

जात एवं मृत सूतक से हीन करके करना चाहिये । सूतकरहित होने पर मन्त्र चैतन्य एवं वीर्य सम्पन्न हो जाता है अन्यथा वह वर्णसमूह मात्र जड़ रहता है ।

मन्त्र के अनेक अर्थ होते हैं—भावार्थ, सम्प्रदायार्थ, निगर्भार्थ, कौलिकार्थ, सर्वरहस्यार्थ एवं महातत्त्वार्थ । भावार्थ का अर्थ है अक्षरार्थ । इसमें मन्त्र का स्वरूप शिव शक्ति के यामल रूप का समझा जाता है क्योंकि मन्त्रों के अक्षर या तो शिव या शक्ति के प्रतीक होते हैं । त्रिपुरा मन्त्र का पहला भाग = हसकलह्रीं—वाग्भव कूट है । यह वामा शक्ति का सङ्केतक है । इसके देवता ब्रह्मा हैं और यह पूर्वाम्नाय से सम्बद्ध है । दूसरा भाग = हसकहलह्रीं कामराजकूट है । यह ज्येष्ठा शक्ति से संवलित विष्णुदैवत तथा दक्षिणाम्नाय से सम्बद्ध है । तीसरा भाग सकलह्रीं शक्तिकूट है । यह रौद्री शक्ति से संवलित रुद्रदैवत तथा पश्चिमाम्नाय से सम्बद्ध है । इन तीनों कूटों के अन्त में स्थित 'ह्रीं' अम्बिका शक्ति का द्योतक है । हकार अग्नि रूप होने के कारण भेद का संहार करता है । रेफ कालाग्नि रूप होने से पापों का नाश करता है । बिन्दुयुक्त ईकार अमृतत्व की उत्पत्ति कर कामनाओं की पूर्त्ति करता है । इसी प्रकार हसकलह्रीं आदि तीनों भाग सृष्टि स्थिति संहार को बतलाते हैं । 'ह्रीं' का ई शिव-शक्ति की यामल अवस्था जिसे अनाख्या कहते हैं, को बतलाता है ।

जहाँ तक सम्प्रदायार्थ का प्रश्न है हसकलर ये वर्ण क्रमशः आकाश जल वायु पृथिवी एवं अग्नि के द्योतक हैं । यह विश्व पञ्चभूतमय है । त्रिपुरसुन्दरी विश्वमयी है । इन भूतों में पन्द्रह गुण हैं । वे इस प्रकार हैं—आकाश का गुण शब्द, वायु का शब्द स्पर्श, तेज का शब्द स्पर्श रूप, जल का शब्द स्पर्श रूप और रस तथा पृथिवी का उक्त चार के साथ गन्ध । मूल मन्त्र में भी पन्द्रह अक्षर हैं । इनमें स्वरों तथा व्यञ्जनों की संख्या ३७ है । वह इस प्रकार है—ह्+अ, स्+अ, क्+अ, ल्+अ, ह्+र्+ई+म् । ह+अ, स्+अ, क्+अ, ह्+अ, ल्+अ, ह्+र् ई+म् । स्+अ, क्+अ, ल्+अ, ह्+र् ई+म् । ये छत्तीस हुए । इनकी समष्टि को एक मान कर कुल संख्या सैंतीस होती है । उक्त छत्तीस वर्ण छत्तीस तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करते हैं ।

निगर्भार्थ में शिव गुरु शिष्य एवं मन्त्र की एकता का प्रतिपादन होता है ।

कौलिकार्थ के विषय में ग्रन्थकार का कथन है कि यहाँ मन्त्र यन्त्र और गुरु का ऐक्य प्रतिपादित होता है । यन्त्र या चक्र एक सौ ग्यारह देवता का उत्कृष्टतम रूप होता है । उनमें त्रिपुरसुन्दरी मुख्य देवता है । इच्छा ज्ञान क्रिया, नवग्रहों, सूर्य चन्द्र और अग्नि में भी वही स्फुरित होती है । ज्ञान-कर्म इन्द्रियों, उनके विषयों, मन बुद्धि अहङ्कार में सर्वत्र वही प्रकाशित होती है । अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्र, डाकिनी हाकिनी आदि छह योगिनी, अकच आदि आठ वर्ग,

प्राण अपान आदि दश वायु, जीवात्मा परमात्मा, राशि, बीज बिन्दु आदि सबके सब देवी के ही स्वरूप हैं । सम्पूर्ण विश्व उसी का स्फार है । गुरु का देह भी देवी के देह-सदृश होता है । उसकी कृपा से शिष्य भी देवीरूप हो जाता है ।

शिष्य शरीरस्थ सहस्रार के मध्य में त्रिकोण, वहीं पर बिन्दु में क्लीं बीज का ध्यान करना चाहिये । इसी प्रकार ललाट के ऊर्ध्व भाग में स्थित मूलाधार कुण्डलिनी, ललाट के मध्य में तीन इन्द्र (= ल) इसी प्रकार अन्य शारीर स्थानों में भिन्न-भिन्न अक्षररूपा देवी का ध्यान करना चाहिये । सर्वरहस्यार्थ के सन्दर्भ में कहा गया है कि मूलाधार जो कि 'ऐं' के आकार का है, में अँड़तीस कलाओं से युक्त पचास वर्णों वाली कुण्डलिनीरूपा मन्त्र विद्या का ध्यान करना चाहिये । महातत्त्वार्थ का तात्पर्य यह है कि आत्मतत्त्व को निष्फल परमसूक्ष्म प्रकाशानन्दरूप एक साथ विश्वोत्तीर्ण-विश्वमय तत्त्व से जोड़ देना चाहिये ।

तीसवाँ पटल—इस पटल में अजपा विद्या से लेकर तीन मन्त्र कूटों का वर्णन किया गया है । हंस बीज (= हं सः) को अनुलोम, विलोम (= सोऽहम्) जपना चाहिये । इस बीज में हकार शुक्ल और सकार रक्त वर्ण का है । इस मन्त्र की भावना की जाती है, जप नहीं । ह प्राण का और स आत्मा का प्रतीक है । इसी प्रकार ह शिव का और स शक्ति का प्रतीक है । दोनों के ऐक्य की भावना से मोक्ष मिलता है । संस्कृत व्यञ्जन वर्णों के साथ स्वर मिलकर उन्हें सप्राण बनाते हैं । इसी प्रकार बिन्दु और विसर्ग उन्हें चेतन बनाते हैं । इसलिये अक्षरों का स्वर एवं बिन्दु का विसर्गयुक्त उच्चारण करना चाहिये ।

बोधिनी विद्या के स्वरूप को बतलाते हुए कहा गया कि ऐं श्रीं ह्रीं हंसः ईं सोऽहं ह्रीं श्रीं ऐं बोधिनी विद्या है । ओं ह्रीं श्रीं हंसः ईं सोऽहं श्रीं ह्रीं ओं यह दीपिनी विद्या है । वाग्भव बीज को जीवनी विद्या कहते हैं । इसी के द्वारा साधक कुल अर्थात् मूलाधार से अकुल अर्थात् सहस्रार तक जाता है । फिर वहाँ से मूलाधार तक आता है । इस प्रकार आवागमन करता हुआ जीव ब्रह्मग्रन्थि का भेदन कर जिह्वा तक आता है । वहाँ अमृत-पान करता है । सञ्जीवनी मन्त्र का एक लाख जप सर्वपापहर होता है । इसी प्रकार कामराजकूट में कामकला बीज की सिद्धि से साधक समस्त संसार को वश में कर लेता है । कामकला बीजस्वरूपा विद्या उगते हुए सूर्य अथवा लाक्षारस के समान रक्त वर्ण की होती है। यह भी मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक जाती है । सारे भुवनों के जीवन को आत्मसात् कर लेती है । तीसरा कूट शक्तिकूट है । इसका भी मूलाधार से शक्तिकूट तक और फिर मूलाधार तक आना-जाना होता है । यह शरीर में अमृत की धारा बरसाता है । स्थावर जङ्गम विषों तथा महारोग का नाशक है ।

कामकला का वर्णन करने हुए बतलाया गया कि यह तीन प्रकार की है—

स्थूल सम और सूक्ष्म । इसका स्थूल रूप इस प्रकार है—आकाश बिन्दु, चन्द्र सूर्य दो स्तन हैं । यह त्रिलोकी शरीर वाली है । एक दूसरे रूप में यह ईकार मुख अग्नि चन्द्र दोनों स्तन और हार्ध कला योनि है । एक अन्य रूप में ऊर्ध्व बिन्दु मुख, दो अधो बिन्दु स्तनद्वय, अन्य वर्ण शेष अङ्ग है । यह रूप बाह्य भावना के लिये है । आन्तर भावना में मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक कुण्डलिनी ही कामकला है । षट्चक्र भेदन करने वाली यह चराचर में व्याप्त है। यह त्रयीमयी है । सामवेद इसका मुख ऋग् यजु: दोनों स्तन है । अथर्ववेद हार्ध कला है । इसका चौथा स्वरूप साक्षात् ब्रह्म ही है ।

अभक्त और अशिष्य को इसे नहीं देना चाहिये । ऐसा करने पर साधक का विनाश हो जाता है । लोभ मोह या भय से इसका उपदेश करने वाला शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त होता है ।

इकतीसवाँ पटल—इस पटल में होम और उससे सम्बद्ध विषयों का वर्णन है। चौकोर हवनकुण्ड में पलाश कुसुम्भ नागकेशर महुआ लालकमल आदि का हवन सर्वसिद्धिप्रद होता है । त्रिकोण कुण्ड त्रिपुरासुन्दरी को प्रसन्नता देने वाला होता है । स्थण्डिल पर भी होम किया जा सकता है । स्थण्डिल के ऊपर यन्त्र बनाकर मध्य में पुष्पाञ्जलि देकर हवनीय द्रव्य और उपकरण का संग्रह करने के बाद कुश-कण्डिका करनी चाहिये । मूलमन्त्र का उच्चारण कर 'स्थण्डिलाय नम:' से स्थण्डिल की पूजा कर त्रिकोण के मध्य कामेश्वर-कामेश्वरी के यामल रूप का ध्यान पूजन कर हवन करने की विधि है । इस क्रम में कामेश्वरी के गर्भ में अग्नि का ध्यान कर पुन: उसे एवं बाह्य अग्नि को एक कर पूजन करना चाहिये। षडङ्ग यागकर मन्त्रों के उच्चारण के साथ अग्नि का गर्भाधार आदि संस्कार करना होता है । अन्य कृत्य का सम्पादन भी वर्णित है । यह नित्य होम है । काम्य होम में मल्लिका मालती दुग्ध त्रिमधु छागमांस आदि के हवन से होता को प्राप्त इष्टसिद्धि की चर्चा की गयी है। पुष्प का सम्पूर्ण हवन करना चाहिये तोड़कर नहीं । लावा एक मुट्ठी, घी एक कर्ष, मधु आधा चुल्लू इसी प्रकार अन्य द्रव्यों की हवनीय मात्रा का उल्लेख कर यह कहा गया कि तत्तद् वस्तुओं की पृथक्-पृथक् उक्त परिमाण में आहुति देने पर सर्वसिद्धि मिलती है । सारी वस्तुओं को मिलाकर हवन करने में कोई परिमाण नहीं है ।

बत्तीसवाँ पटल—इस पटल में कहा गया कि पहले त्रिलोह के द्वारा एक अङ्गूठी बनाने की विधि बतलाकर उसे पञ्चगव्य एवं पञ्चामृत से धोकर रखना चाहिये । वर्णमय कमल के ऊपर कलश की स्थापना कर उसके मध्य में उस अङ्गूठी को डाल देना चाहिये । उसमें परा देवी सम्मोहनी का आवाहन कर पूजन करना चाहिये । मातृकान्यास करने के पश्चात् वर्णमयी देवी तथा उसके चारो

ओर दिशाओं में रखे कुम्भों में व्यापिनी आदि की पूजाकर मुद्रिका का स्पर्श करते हुए जप करना चाहिये । जप के बाद होम का विधान है । बाद में शिष्य का अभिषेक कर उस अङ्गूठी को शिष्य को पहना देना चाहिये । यह सर्वरक्षाकरी मुद्रा तर्जनी में धारण की जाती है ।

रक्षाकरी मुद्रा नवरत्नों से भी बनती है । इस क्रम में पहले तत्तत् रत्नों में तत्तद् ग्रहों का आवाहन पूजन करना पड़ता है । फिर देवी का आवाहन पूजन कर मुद्रा को धारण करना पड़ता है । इससे सारे अनिष्ट दूर होते हैं तथा धन-धान्य की वृद्धि होती है ।

तैतीसवाँ पटल—इस पटल का विषय श्रीचक्र की प्रतिष्ठा है । प्रतिष्ठा तीन प्रकार की होती है—१. चक्रप्रतिष्ठा, २. मूर्त्तिप्रतिष्ठा और ३. शिष्यप्रतिष्ठा । शिष्य की प्रतिष्ठा दीक्षा से होती है । मूर्त्ति के सन्दर्भ में रत्न सुवर्ण अथवा चाँदी की प्रतिमा बनाकर प्रतिष्ठा की जाती है । चक्रराज श्रीचक्र की प्रतिष्ठा शुभ घर में की जाती है । अधिवास आदि कृत्यों का सम्पादन कर आचार्य पहले पञ्चगव्य एवं पञ्चामृत से चक्र का प्रक्षालन कर उसकी विधिवत् पूजा करने के बाद उसे पलङ्ग पर रखे । दिव्य अनुलेप से अनुलिप्त कर सुवस्त्र से ढँककर धूप दीप दिखाये । इक्यासी कलशों की स्थापना कर चौकोर मण्डल में गुरु शिष्य के साथ शयन करे ।

प्रात:काल सन्ध्या आदि करने के बाद विधिवत् मण्डप में प्रवेश करे । पूर्व की भाँति पूजन आदि सम्पन्न कर चक्र को इक्षुरस आदि से स्नान कराकर भद्रपीठ पर रखे । उस चक्र में देवी त्रिपुरसुन्दरी की भावना करनी चाहिये । आवाहन आदि कर प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र से देवी की उस चक्र में प्रतिष्ठा करनी चाहिये । इसी क्रम में यहाँ प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र का उद्धार भी बतलाया गया है । चक्र का स्पर्श करते हुए प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र का उच्चारण करते हुए प्राणप्रतिष्ठा की जाती है । तत्पश्चात् तीन दिनों तक उत्तम उपचारों से उसकी पूजा करनी चाहिये । एक सौ आठ बार प्रतिदिन हवन भी करना होता है । नाना प्रकार के वाद्य आदि से महोत्सव कर गुरु को दक्षिणा तथ प्रमदा स्त्रियों एवं ब्राह्मणों को भोजन, विविध वस्तु दान आदि से सन्तुष्ट करना चाहिये । देवी की पूजा यन्त्र मन्त्र अस्त्र शस्त्र प्रतिमा अग्नि शिवलिङ्ग आदि में की जाती है अन्यत्र नहीं ।

चौंतीसवाँ पटल—प्रस्तुत पटल में कुलाचार एवं उससे सम्बद्ध विषयों का वर्णन है । कौल परम्परा में त्रिपुरसुन्दरी की पूजा के लिये मांस मद्य मैथुन आवश्यक अङ्ग हैं । इस अर्चा में उपवास अथवा व्रत आवश्यक नहीं है । दुर्गन्धयुक्त, रागहीन, अलङ्काररहित तथा रक्तपुष्प के विना अविश्वस्तहृदय अथवा अन्यासक्तचित्त से देवी की उपासना नहीं करनी चाहिये । तुलसी के पत्र-पुष्प से

देवी की पूजा निषिद्ध है । कन्यायोनि, नग्नस्त्री, निर्वस्त्रस्तन आदि को नहीं देखना चाहिये । भोजना उतना ही करना चाहिये जिससे शरीर स्वस्थ रहे । कलिकाल में निराहार व्रत वर्जित है ।

जहाँ तक बलिदान का प्रश्न है साधक को स्वयं पशुमारण नहीं करना चाहिये । जब दूसरा कोई पशु की गर्दन को अलग कर रहा हो उस समय 'उद्‌बुध्यस्व पशो......' मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये । एक ही पशु की बलि देने का विधान है । ब्रह्मज्ञान होने पर बलि नहीं देनी चाहिये । ब्रह्म, शक्ति और महेश्वर एक ही अर्थ के वाचक हैं । लिङ्गभेद केवल शाब्दिक है ।

देवी की पूजा करते समय थूकना छींकना बात करना अधोवायु छोड़ना निषिद्ध है । ऐसा करने वाला योगिनी का भक्ष्य हो जाता है । लोकधर्म का पालन करना चाहिये । पुरुषों के विषय में देवबुद्धि, गुरुपुत्र गुरुस्त्री में गुरुभाव रखना चाहिये । विशेष पर्वों पर कुलवृक्ष कुलास्त्रों और कुलपल्लवों से विशेष पूजा करनी चाहिये । स्वस्तुति परनिन्दा से दूर रहना चाहिये । अपने शरीर को वस्त्र अनुलेप आदि से अलंकृत रखना चाहिये । मदिराक्षी के साथ मदिरापान मत्त रहना चाहिये । लोगों के द्वारा प्रदत्त वस्तुओं का उपयोग अनासक्त चित्त होकर करना चाहिये । इन्द्रियों के चञ्चल होने पर पर्यटन करना चाहिये । अलङ्कार आदि से स्वयं विभूषित होते हुए शक्ति को भी विभूषित रखना चाहिये । उसे अपने से अभिन्न और अपने को त्रिपुरसुन्दरी से अभिन्न समझने वाला साधक परमगति को प्राप्त होता है । वस्त्र भूषण आदि से पहले राजस फिर तामस और अन्त में सात्त्विक भावप्राप्त कर चतुर्थ अवस्था में पञ्चमकारपरायण होकर दिव्य भाव में स्थिर होना ही चरम लक्ष्य है ।

जिस साधक या राजा के राज्य में परिजन भाईबन्धु दुःखी तथा स्त्रियाँ दुश्चरित्र होती हैं; प्रजा पीड़ित रहती है उसके राज्य में पग-पग पर विपत्ति होती है और आयुष्ट्व तथा लक्ष्मी का नाश होता है । आयु और शान्ति के लिये राजा को चाहिये कि वह एक करोड़ होम करे । पुरश्चरण भी करने का विधान है । मद्यपान से जिसका ज्ञान लुप्त हो जाय और मन में विकार उत्पन्न होने लगे, वह अधोगति को प्राप्त होता है । मद्यपान से प्रलाप उन्माद क्रोध हास्य आवेश असूया आदि दोष उत्पन्न होते हैं । किन्तु उसका संस्कार कर अमृत रूप से पीने पर स्थितप्रज्ञता, समत्वभाव, ब्रह्मानन्द, निमेषहीनता, विकारराहित्य, मधुर भाषण आदि गुण साधक के अन्दर आ जाते हैं । वैराग्य, मुमुक्षुत्व, सर्वज्ञता आदि ऐश्वरी गुणों की अधिकता होने लगती है । अष्ट सिद्धियाँ हस्तगत होती हैं ।

स्त्रियों के विषय में कहा गया है कि साधक को चाहिये कि वह उनको सन्तुष्ट और तृप्त रखे । एक पतिव्रता भार्या ही पर्याप्त होती है । कुलटा स्त्री

मूषक की भाँति कुल का क्षय कर देती है । जो स्त्री विना किसी प्रयत्न के साधक के साथ रमण की इच्छा करे वह भी स्वकीया ही मानी जाती है । धन आदि के द्वारा हठात् आकृष्ट कर परायी स्त्री के साथ गमन करने वाले नरक मे जाते हैं । यदि स्त्री दु:शील हो तो उसका त्याग कर देना चाहिये उसकी प्रताड़ना या हत्या पाप है ।

पैंतीसवाँ पटल—इस पटल में काम्य पूजा आदि का वर्णन है । काम्यार्चन को अत्यन्त गुप्त रूप से करना चाहिये । प्रकट होने पर लक्ष्य की सिद्धि नहीं होती । इस अनुष्ठान में शक्तिपूजा आवश्यक अङ्ग है । शक्ति से घृणा नहीं करनी चाहिये और दर्पवश उसे पुष्प से भी नहीं मारना चाहिये । शक्ति को भक्ति के साथ प्रणाम करने वाला मोक्ष को प्राप्त करता है । त्रिपुरसुन्दरी की पूजा में होम आवश्यक है । होम के विना शक्तिपूजा निष्फल होती है । इसलिये शक्त्यर्चन आवश्यक है । इसमें जाति का ध्यान नहीं रखना चाहिये ।

शक्ति की पूजा निर्जन स्थान में आधी रात को की जाती है । साधक सर्वाभरणभूषित चन्दन आदि से युक्त होकर शक्ति को भी अलंकृत कर मूल्यवान् विस्तर पर उसे बिठाये । पानपात्र भी रहना चाहिये । मांस मत्स्य मुद्रा का भी होना अनिवार्य है । देवता की भाँति उसकी पूजा कर उसे सामने बैठी हुई साक्षात् कामेश्वरी समझना चाहिये । अपने को कामेश्वर समझते हुए शक्तिजिह्वा से विलोडित मद्य को बार-बार पीना चाहिये । मदिराघूर्णित लोचन तथा नग्न होकर शक्ति से प्रार्थना करनी चाहिये । कौलिक पूजा में बाह्य उपकरणों की आवश्यकता नहीं होती । शारीरिक क्रियायें ही उपचार होती हैं । जैसे नखक्षत दन्तक्षत पुष्प, आलिङ्गन चन्दनलेप, चुम्बन स्तुति होती है । इस प्रकार कुलपूजा करने वाला कुलीन कहलाता है । एक मास तक पूजा करने से आकर्षणसिद्धि प्राप्त होती है । इसी प्रकार छह मास में वह रुद्र हो जाता है । कौलपूजा रात्रि में की जाती है किन्तु बाह्यपूजा प्रात: ही करनी चाहिये । मध्याह्न पूजा को योगिनी एवं सायं पूजा को राक्षसी ले लेती हैं ।

छत्तीसवाँ पटल—इस पटल में परशक्ति का आनयन, कौलिकी दीक्षा, वसन्तसुन्दरी ध्यान आदि की चर्चा की गयी है । दूसरी अदीक्षित स्त्री के साथ सङ्गम करने से सिद्धि की हानि होती है । अपनी शक्ति (पत्नी) को गुरु के पास ले जाकर दीक्षित करना चाहिये । गुरु उसे अपनी पुत्री समझे । दोनों पक्षों की अष्टमी एवं चतुर्दशी को कच्चे शराब में षट्कोण यन्त्र बनाकर सिन्दूर से स्त्री की प्रतिमा बनाये। कपोल पर साध्य का नाम मन्त्र से सम्पुटित लिखकर समस्त अङ्गों की सन्धियों में कामबीज लिखे । प्रतिमा के मुख में पुष्प का आसव देकर वसन्तसुन्दरी मन्त्र का जप करना चाहिये । अपनी शक्ति को बायें बिठाकर उसके

कन्धे पर अपना हाथ रखे । प्रतिमा के ऊपर न्यास करे । फिर पूर्वोक्त विधि से उसकी पूजा करनी चाहिये। देवी का ध्यान करते हुए एक लाख जप करना चाहिये ।

इस प्रक्रिया में एक भिन्न प्रकार का होम विहित है । निर्जन शुद्ध स्थान में पद्मासन लगाकर बैठा हुआ साधक पूरक कुम्भक रेचक प्राणायामों के द्वारा नाडी-शोधन करे । नेत्रों को निमेषोन्मेषरहित कर नासिका के अग्रभाग पर स्थिर करे । दाँत से दाँत ओष्ठ से अधर को लगाते हुए जिह्वा को तालु में सटाये । यह सुन्दरी मुद्रा है । सहस्रदल कमल में मूलाधार से उठी वायु से दीपशिखा के समान अमृतमण्डल को क्षुब्ध कर मूलाधार कमल में अमृतधारा का गिरते हुए ध्यान करे । इस प्रकार सात बार करना चाहिये । हृदयस्थ बाणलिङ्ग में आद्या भगवती की पूजा करनी चाहिये । यह पूजा भावनात्मक होती है जिसमें कुण्डलिनी पात्र होती है । छत्तीस तत्त्व गन्ध का काम करते हैं । अहिंसा आदि पुष्प हैं; इत्यादि ।

सहस्रदल के मध्य सुन्दरी का ध्यान करना चाहिये । उसी कमल के मध्य योनियुक्त भैरवानन्द लिङ्ग का ध्यान करते हुए दोनों के ऐक्य से अमृतस्राव कर जिह्वा को गले के अन्दर संयुक्त कर उस अमृत को पीना चाहिये । पृथिवी में जल, जल में शून्य, शून्य में वायु उसमें ध्वनि, ध्वनि में नाद, नाद में बिन्दु, उसके मध्य ज्योति जो कि निराकारा निरात्मया है वही परा सुन्दरी है ।

पृथिवी आदि का पृथिवी आदि में लय करते हुए ज्योति का लय ब्रह्म में, उसी में मन का लय करना चाहिये । मन के न रहने पर पाप-पुण्य कुछ नहीं होता। कुण्डलिनीरूपी कुण्ड में सांसारिक प्रपञ्चरूपी हवि का होम करना चाहिये । यहाँ आत्मा अग्नि है । धर्म अधर्म हवि से वह अग्नि दीप्त है । सुषुम्ना के मार्ग से इन्द्रियों की वृत्तियों का होम किया जाता है । ऐसा करने से साधक चिन्मय ब्रह्म हो जाता है।

सैंतीसवाँ पटल—यह पटल शक्ति से सम्बद्ध है । वैदिक नियम के अनुसार स्त्री मोक्षमार्ग में बाधक होती है किन्तु तान्त्रिक साधना में वही मोक्ष का द्वार है। धर्म की गति विचित्र है । सर्वभोजी अग्नि, सर्वसेवी जल शुद्ध माना जाता है । इसी प्रकार मक्षिकोच्छिष्ट मधु, रक्त से बना गो दुग्ध आदि, अनर्थकारी मद्य सब के सब यज्ञोपयोगी माने जाते हैं । इसलिये जिस सम्प्रदाय में जो विहित है वही उसके लिये धर्मसाधन है । तान्त्रिक सम्प्रदाय में शक्ति तथा मद्य आदि अनिवार्य हैं किन्तु उनमें द्वैत भावना नहीं होनी चाहिये । विधिपूर्वक इनका सेवन मोक्षदायी होता है । मन के ब्रह्म में लीन एवं अद्वैत भाव को प्राप्त होने पर मेध्यामेध्य ग्राह्याग्राह्य भक्ष्याभक्ष्य का भेद नहीं रहता । यह भेद अविद्याजन्य है ।

शक्ति को पराविद्या समझना चाहिये । उसी के अनेक नाम अनेक रूप अनेक शरीर हैं । शक्तियाग में मांस अमृत होता है । उसके लिये पशु का वध न करने वाला ब्रह्मघाती समझा जाता है । यदि वासना शुद्ध है तो मद्यपान भी पवित्र है । यह समस्त सृष्टि प्रकृति की रचना है । उसी की माया से मोहित जीव अपने को कर्त्ता समझता है । उसका कर्तृत्व स्फटिक मणि में जवापुष्प की रक्तता के समान है। इसलिये चित्त को ब्रह्म में लीन कर कर्म करने से मनुष्य पापपुण्य से लिप्त नहीं होता । जिस प्रकार दो कुम्भ से अथवा एक नाव से जल को पार करते हैं । उसी प्रकार कौलमार्ग या दक्षिण मार्ग से भवसागर को पार किया जा सकता है । यह सब माया शक्ति का खेल है । उसके प्रकृति विद्या अविद्या महाविद्या अनेक नाम है। ब्रह्मा आदि उसी की उपासना करते हैं । योग भोग आदि के द्वारा उसकी आराधना से भोग-स्वर्ग दोनों मिलते हैं । विना शक्ति को सन्तुष्ट किये मुक्ति नहीं मिलती । वेदमाता गायत्री शक्ति की उपासना से ही ब्रह्मा-सरस्वती, विष्णु-लक्ष्मी और शिव-शक्ति के साथ मिलकर अपना-अपना कृत्य करते रहते हैं । जो लोग विष्णु भाव के उपासक हैं वे उसी भाव से उपासना कर भावसिद्धि प्राप्त करते हैं । यह क्रम पशुभाव उत्पन्न करता है । इस विषय में कहा गया कि विष्णु की प्रेरणा से शिव ने वैष्णव तन्त्र की रचना की ।

वैष्णव तन्त्र में शक्ति दो रूपों में वर्णित है—१. स्थूला और २. सूक्ष्मा । स्थूल रूप से वह देवी तीनों लोक को मोहित की हुई है । इसलिये लोग उस रूप में स्थित नारी को मारते पीटते और गालियाँ देते हैं । कुछ लोग उसको आभूषण वस्त्र सेवा सम्भोग से प्रसन्न रखते हैं । कुण्डलिनी शक्ति को प्राण के द्वारा सहस्रारस्थ परानन्द के साथ संयुक्त करने पर उससे निकलने वाले अमृत से कुण्डलिनी के मुख में हवन करना चाहिये । इसमें चन्द्रमा और सूर्य स्रुक् और स्रुवा का काम करते हैं। ऐसा करने से देह नीरोग होकर यथाकामी हो जाता है।

अँड़तीसवाँ पटल—शक्ति भोग से जितनी सन्तुष्ट होती है तप और योग से उतनी नहीं । ईश्वर कहते हैं कि मैंने भी योग से उसे सन्तुष्ट करना चाहा । मुझे शक्तिहीन देखकर ब्रह्मा और विष्णु ने देवीसूक्त से देवी को सन्तुष्ट किया । सन्तुष्ट होने पर देवी ने वरदान देने की इच्छा व्यक्त की । ब्रह्मा ने कहा—हे माता! मेरे विष्णु एवं रुद्र के अन्दर सृष्टि पालन और संहार की शक्ति दो । शिव को अपनी माया से मोहमय करो । देवी ने कहा—मैं सती रूप से शङ्कर को मुग्ध करूँगी। पुन: उस शरीर का त्याग कर पार्वती रूप में प्रकट होऊँगी । देवी के अन्तर्हित होने पर विष्णु ने ब्रह्मा की प्रार्थना पर शिव में वीरभाव का निवेश किया । ईश्वर ने देवी की स्तुति की और उसके परिणामस्वरूप देवी ने शिव को अपना विराट् स्वरूप दिखलाया ।

उनतालिसवाँ पटल—देवी ने महादेव से कहा कि पुरुष और प्रकृति दो तत्त्व नित्य हैं । प्रकृति गुणवती और बलवती है; पुरुष निर्गुण और निर्बल है । मैंने सृष्टि की इच्छा से पुरुष को प्रेरित किया और फिर वह आनन्दयुक्त होकर मेरे साथ आनन्दित हुआ । दोनों के जड़ होने से शून्य की उत्पत्ति हुई । उस शून्यभाव से आद्या शक्ति पैदा हुई । वह त्रिगुणमयी और त्रिविन्दुरूपा हुई । शिव के साथ विपरीत रति के द्वारा वह अर्ध हकार रूपा होकर अग्नि चन्द्र और सूर्य रूपिणी हो गयी । यह सृष्टि तीन बिन्दुओं में स्थित है । पञ्चभूतमयी यह सृष्टि असत्य है और जो सत्य सदृश दिखती है वह भ्रम है ।

इस पाञ्च भौतिक शरीर में जाति की कल्पना, ऊँच नीच का विचार भ्रम है। वह सब शक्ति का ही विजृम्भण है । आत्मा देह से भिन्न है । वह आनन्द स्वरूप है—ऐसा जो जानता है वही ब्राह्मण है । प्राण आदि अथवा नाग आदि पाँच वायुओं से प्रेरित यह शरीर अपने को कर्त्ता मानता है—यह भ्रम है । यह उसी प्रकार है जैसे जल के अन्दर चञ्चल चन्द्र बिम्ब को देखकर चन्द्रमा को चञ्चल मानना । सारा विश्व आत्मा के ऊपर उपाधि रूप है । 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों से उसका निराकरण कर 'अहं ब्रह्मास्मि' ज्ञान करना चाहिये ।

शिव ने पूछा—आत्मा देह से भिन्न कैसे है? ब्रह्म का ज्ञान कैसे होता है? जगन्मयी ने उत्तर में कहा—अज्ञान से आवृत होने के कारण आत्मा पृथक् दिखायी देता है । जैसे बादल के हट जाने से सूर्य, उसी प्रकार अविद्या के हट जाने से सब कुछ ब्रह्म ही समझ में आता है ।

चालिसवाँ पटल—इस पटल में शिव शक्ति ज्ञान और कुलयाग का वर्णन है । प्रत्येक शरीर में पुरुष भाव शिव है, स्त्री भाव प्रकृति या शक्ति है । इन दोनों में कोई भेद नहीं है । एक के विना दूसरे का अस्तित्व सम्भव नहीं । चन्द्र और उसकी चन्द्रिका की भाँति दोनों अभिन्न हैं ।

एक ही चैतन्य जो कि शब्द-ब्रह्म है वर्ण मन्त्र विद्या आदि के भेद से प्रकट होता है । शक्ति की पूजा अनेक प्रकार से होती है । मन्त्र देवताओं के वर्णमय विग्रह हैं । उनका जप आदि उनकी पूजा है । दूसरी पूजा स्वर्णमय मूर्त्ति बनाकर की जाती है । तीसरी पूजा सोने या रत्नों के ऊपर यन्त्र बनाकर होती हैं । देवी का चौथा रूप गुप्त है । यह कौलमार्ग से सम्बद्ध है । इसलिये चौथी पूजा कौल साधक ही करते हैं । कौलमार्ग अत्यन्त दुर्गम है । योनि शक्ति है, लिङ्ग शिव है। रज शक्ति है, वीर्य शिव है । इस प्रकार जगत् शिवशक्ति से परिपूर्ण है । दोनों एक हैं । योनि के अन्दर लिङ्ग का लीन होना दोनों का एकीकार होना है। इसी के द्वारा मोक्ष होता है जगदम्बा के लिये इससे बढ़कर प्रीतिकारक संसार में कुछ नहीं है ।

शक्ति ने कहा—हे विश्वेश! मेरे अन्दर प्रवेश करो । ब्रह्मा मेरा बाँयाँ विष्णु मेरा दाँया स्तन पीते हैं । तुम मेरे अधरामृत को पियो । जिस प्रकार पतिहीन नारी सर्वकर्मविहीन होती है उसी प्रकार शक्ति के विना मन्त्री का प्रयास व्यर्थ होता है । भगलिङ्ग के संयोग से जो आनन्द मिलता है वही ब्रह्म है । शक्ति के साथ कामक्रीडा की समस्त क्रियायें आसन भूतशुद्धि प्राणायाम आदि मानी जाती हैं । प्रतिदिन ऐसा करने वाला जीवन्मुक्त होता है, असाध्य को सिद्ध कर लेता हैं। साधना की इस यात्रा में एक ही शक्ति पर्याप्त होती है ।

इकतालिसवाँ पटल—यहाँ प्रश्नोत्तर के द्वारा अनुत्तर के ज्ञान और उसकी प्रक्रिया की चर्चा है । पार्वती ने पूछा कि मन्त्र योग आदि का कारण क्या है? वाच्य शिव हैं वाचक शक्ति । प्रकाश शिव हैं विमर्श शक्ति तो क्या शिव शक्ति के अधीन हैं? शिव ने कहा—मैं सत् हूँ । तुम चित् हो । दोनों का संयोग ही सिद्धि है । जब दोनों एक हो जाते हैं तब इसे शाम्भव तत्त्व कहा जाता है ।

पार्वती के यह पूछने पर कि अनेक सकल निष्कल मन्त्रों में सर्वश्रेष्ठ मन्त्र कौन सा है? परमेश्वर ने उत्तर दिया कि सारे मन्त्रों के प्रतिपाद्य हमी दोनों हैं और हम दोनों का भी प्राप्य अनुत्तर तत्त्व है जो कि 'अहम्' के रूप में जाना जाता है। परामन्त्र का भी प्राप्य अनुत्तर ही है । इसकी प्राप्ति का उपाय बतलाते हुए ईश्वर ने कहा—अनुत्तर तत्त्व वाङ्मनोऽगोचर होता हुआ भी बिन्दु नाद और बीज रूप में तीन प्रकार का होता है । ये ही सत् चित् और आनन्द है । बिन्दु शिव का रूप है । उससे नाद उत्पन्न होता है । दोनों के समरस होने पर बीज बनता है । स्वर शिव है व्यञ्जन शक्ति है । दोनों को मिथुन भाव से देखने पर अनुत्तर तत्त्व का साक्षात्कार होता है । इससे मन्त्र और मन्त्री अभिन्न हो जाते हैं ।

अनुत्तर का साक्षात्कार होने पर सम्पूर्ण विश्व अपने अन्दर उसी प्रकार उत्पन्न और लीन होता है जैसे निर्मल आकाश में बादल । इसको जानने के लिये प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती । यह स्वप्रमाण है । चित् ही इसमें प्रमाण है। यह विश्व उसी चित् का स्फार है । यह शुद्ध तत्त्व शिव शक्ति सदाशिव ईश्वर और शुद्ध-विद्या के भेद से पाँच रूपों में स्फुरित होता है । माया के द्वारा सङ्कुचित होकर शिव ही जीव होता है । उस जीव में सङ्कोच के कारण किञ्चित्-कर्तृत्व किञ्चित्-ज्ञत्व आदि भाव आ जाते हैं । शेष सृष्टि का विकास सांख्य के अनुसार होता है ।

आगे चलकर इस पटल में अकार आदि वर्णो से सृष्टि की प्रक्रिया बतलायी गयी है । अ अर्थात् अनुत्तर की, इ = इच्छा से उ = उन्मेष होने पर आ = आनन्द, ई = ईषणा, ऊ = ऊर्मि, होती है । अ इ उ मिलकर त्रिकोण बनाते हैं। ये ही त्रिशूल हैं । जो द्वैतभाव को नष्ट कर देते हैं । इस प्रकार यह आदि-

क्षान्त मातृका ही सृष्टि की योनि है। स्वर बीज और व्यञ्जन योनि है। इन्हीं के संघट्ट से विश्व उत्पन्न होता है और अन्त में संविद् रूपी अग्नि में विलीन हो जाता है।

बयालिसवाँ पटल—पार्वती ने वाणी आदि से सम्बद्ध प्रश्न किया तो ईश्वर ने उन प्रश्नों का उत्तर दिया कि वाणी मन से उत्पन्न होती है। प्राण आहार लेता है। मन पाप करता है। मन का अस्तित्व समाप्त होने पर पाप-पुण्य कुछ नहीं होता। जीव ही प्राण कहा जाता है। वह बाल के अग्रभाग का सौवा भाग है। सत्त्व रजस् तमस् से युक्त होकर यह अनेक प्रकार के भावों से युक्त होता है। किन्तु जब नाभिस्थ होता है तो निष्कल को जानकर मुक्त हो जाता है। श्वास निश्वास के द्वारा वह ऊपर नीचे चलता रहता है।

इसी क्रम में भगवान् शिव ने सनत्कुमार के उपदेश की चर्चा की। इसमें ग्रन्थकार ने कठोपनिषद् एवं श्वेताश्वतर उपनिषत् के मन्त्रों को कुछ परिवर्तन के साथ उद्धृत करते हुए आत्मा के स्वरूप उसके गुण तथा कार्य का वर्णन किया तथा अपरोक्षनुभूति का स्वरूप बतलाया है कि जाग्रत आदि जो कुछ अवस्था दिखायी देती है 'अहं ब्रह्मास्मि' के अनुभव के बाद सब लुप्त हो जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि मैं ही अणोरणीयान् अपाणिपाद होते हुए जवन ग्रहीता इत्यादि हूँ। वेदों के द्वारा मैं ही वेद्य हूँ।

अन्त में इस तन्त्र के अध्ययन की फलश्रुति वर्णित है कि इसका अध्ययन करने वाला अग्निपूत, सुरापान से पूत, कर्त्तव्याकर्त्तव्य से पूत, अगम्यागमन आदि आदि से पवित्र हो जाता है।

विषयानुक्रमणिका

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES
152
*****

THE
GAṆEŚA PURĀṆA

(With Introduction, Short Story in Hindi & Sanskrit, Critically Edited SANSKRIT TEXT and HINDI TRANSLATION and Appendices)

Edited and Translated by

DR. MAHESH CHANDRA JOSHI

M.A., SAHITYACHARYA, Ph.D.

CHOWKHAMBA SANSKRIT SERIES OFFICE

गणेशपुराण : परिशिष्ट

कृष्णदास संस्कृत सीरीज
२५२
****

कृष्णद्वैपायनमहर्षिव्यासविरचितम्

गरुड़महापुराणम्

मूल तथा भाषानुवाद

अनुवादक
ज्योतिर्विद राधिकारमण
मन्त्रशास्त्री, एडवोकेट

भूमिका लेखक
डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी
वाराणसी

विषयानुक्रमणिका

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा संस्कृत ग्रन्थमाला
582

महर्षिगौतमप्रणीतं

गौतमीयमहातन्त्रम्

'ज्योत्स्ना' भाषाभाष्योपेतम्

(श्रीकृष्ण का तान्त्रिक अर्चन-विवेचक ग्रन्थ)

भाषाभाष्यकारः
आचार्य श्रीनिवास शर्मा

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

विषयानुक्रमः

विषयाः **पृष्ठाङ्काः**

श्री:

ऋषिवरघेरण्डयोगीश्वरविरचिता

घेरण्डसंहिता

(योगशास्त्रम्)

श्रीमथुरास्थदक्षगोत्रोद्भवचातुर्वेदिशर्मश्री ५ पंडितकल्याण-
चन्द्रात्मजराधाचन्द्रभिषग्विरचितव्रजभाषाभाष्य-
नामकव्रजभाषानुवादविभूषिता

खेमराज श्रीकृष्णदास, प्रकाशन बम्बई.

श्री:

विषयानुक्रमणिका

इति विषयानुक्रमणिका ।

घेरण्ड संहिता

भाषानुवाद सहिता

भाष्यकार:
ब्रह्मलीन राष्ट्रगुरू श्री १००८ श्री स्वामीजी महाराज

श्री पीताम्बरा पीठ
दतिया (म.प्र.)

अनुक्रमणिका

प्रथमोपदेश:

वस्तिप्रकरणम्

द्वितीयोपदेशः

आसनप्रकरणम्

तृतीयोपदेश:

मुद्राकथनम्

चतुर्थोपदेश:

प्रत्याहार:

पञ्चमोपदेश:

प्राणायाम:

षष्ठोपदेश:
ध्यानयोग:

सप्तमोपदेश:
समाधियोग:

विट्ठलदास संस्कृत सीरीज

७

ईश्वरप्रोक्तं

ज्ञानार्णवतन्त्रम्

(श्रीविद्याविवरणात्मकम्)

सम्पादकः भूमिकालेखकश्च

डॉ० सुधाकर मालवीयः

एम. ए., पीएच.डी., साहित्याचार्य,
संस्कृतविभागः, कलासंकायः
काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः, वाराणसी

हिन्दी व्याख्याकारः

पं० रामरंजन मालवीयः

महामना संस्कृत शोध संस्थान, वाराणसी

कृष्णदास अकादमी

वाराणसी

विषयानुक्रमणिका

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ माला—2

ज्ञानोदयतन्त्रम्

JÑĀNODAYA TANTRAM

भोट विद्या संस्थानम्

सम्पादक :

प्रो० समदोङ रिनपोछे
योजना निदेशक

प्रो० व्रजवल्लभ द्विवेदी
उपनिदेशक

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी

बुद्धाब्द २५३१

खीष्टाब्द १९८८

विषयसूची

038

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीमन्महर्षि वेदव्यासप्रणीत

महाभारत-खिलभाग हरिवंश

(श्रीहरिवंशपुराण)

हिंदी-टीकासहित

टीकाकार—

पण्डित रामनारायणदत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम'

सटीक महाभारत-खिलभाग हरिवंशकी सम्पूर्ण विषय-सूची

(हरिवंशपर्व)

(विष्णुपर्व)

(भविष्यपर्व)

श्रीहरिवंश-माहात्म्य

(संतानगोपाल-मन्त्रविधि)

॥ श्रीः ॥

हठयोगप्रदीपिका ।

सा च

सहजानन्दसंतानचिन्तामणिस्वात्माराम-
योगीन्द्रविरचिता

ब्रह्मानन्दकृतज्योत्स्नाभिधया टीकया समलंकृता

दाधीचकुलोत्पन्नेन स्वर्वासिना श्रीधरेण कृतया

मनोभिलाषिण्या भाषाव्याख्ययोपेता च ।

मुम्बईनगरे

प्रबोधरत्नाकरसमाख्ये मुद्रणयन्त्रालये

मुनि ७ वसुधा १ पुराण १८ प्रमिते शालीवाहनशके १८१७

परलोकनिवासिनो जटाशंकरात्मजश्रीधरस्य धर्मपत्न्या

तारावाई संज्ञया

मुद्रयित्वा प्रकाशिता ।

तृतीयं संस्करणम् ।

मूल्यं रूप्यकद्वयम् २

हठयोगप्रदीपिकानुक्रमणिका.

॥ अथ प्रथमोपदेशः ॥

इति प्रथमोपदेशः ॥ १ ॥

॥ अथ द्वितीयोपदेशः ॥

॥ इति द्वितीयोपदेशः ॥ २ ॥

॥ अथ तृतीयोपदेशः ॥

॥ इति चतुर्थोपदेशः ॥ ४ ॥

स्वात्माराम-कृत

हठप्रदीपिका

हिन्दी - संस्करण

संस्करणकर्ता

स्वामी दिगम्बरजी

निदेशक, कैवल्यधाम

तथा

डा. पीताम्बर झा

आचार्य, एम.ए., पीएच. डी., अनुसन्धान आधिकारी
(दार्शनिक-साहित्यिक अनुसन्धान विभाग)

कैवल्यधाम

स्वामी कुवलयानन्द मार्ग, लोनावला - ४१० ४०३ (पुणे)

पढ़कर या इधर-उधर कुछ जानकारी प्राप्त कर योग का अभ्यास नहीं आरम्भ कर देना चाहिये । पुरानी कहावत है-देखा-देखी कीन्हे जोग । छीजी काया बाढ़े रोग ।। "गोपनीयं प्रयत्नेन" कहते समय कदाचित् यह बात भी स्वात्माराम के ध्यान में रही हो । एक बात और यहा ध्यान में रखनी चाहिये कि गोपनीयता का अर्थ यह नहीं है कि ऐसा गुप्त रक्खें कि किसी को भी पता न चले । यदि इस प्रकार शब्दार्थ-मात्र ही तात्पर्य होता तो आज हमें यह ग्रन्थ देखने को नहीं मिलता । और न यह हठयोग-परम्परा ही मिलती । अतः गोपनीयता का तात्पर्य मात्र दो-तीन बातों से है । एक, कि यह एक बहुत ही उत्कृष्ट अभ्यास है । दूसरा, कि इसे प्रदर्शन की दृष्टि से न करें । और तीसरा, कि जानकार व्यक्ति के निर्देशन में ही करें ।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि स्वात्माराम की हठप्रदीपिका में हठयोग के प्रति उक्त प्रकार का व्यावहारिक दृष्टिकोण समाज के लिये जितना अधिक उपयोगी उस समय में था उतना ही आज भी है ।

विषयवस्तु -

प्रस्तुत-पुस्तक में पाँच उपदेश हैं, जिनमें क्रमशः - आसन, प्राणायाम, मुद्रा, नादानुसन्धान तथा यौगिक-चिकित्सा-विधि जैसे विषय का निरूपण मुख्य रूप से किया गया है । इस प्रकार स्वात्माराम ने हठयोग के मात्र चार अंगों का निर्देश किया है, जो स्वात्माराम की विशेषता है, जबकि विभिन्न हठाचार्यों ने इसके कुछ और भी अंगों का निर्देश किया है । अंगों की संख्या में कितनी भी भिन्नता रही हो, इस बात पर प्रायः मतैक्य है कि हठयोग का अभ्यास राजयोग की प्राप्ति के लिये ही किया जाता है । अब, पाठकों की सुविधा के लिये प्रत्येक उपदेश का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है ।

प्रथम उपदेशः -

आरम्भ में श्री आदिनाथ और उसके बाद श्रीनाथ गुरु (गोरक्षनाथ) को नमन करने के बाद सिद्ध-हठयोगियों की लम्बी-परम्परा का निर्देश किया

गया है । इसके बाद हठाभ्यास के लिये उपयुक्त स्थान एवं 'मठिका' का निरूपण करते हुए अभ्यास में बाधक और साधक छः अनिवार्य-तत्त्वों का उल्लेख किया गया है । इसके बाद हठ के प्रथम अंग के रूप में आसनों का वर्णन है, जिनकी संख्या १५ है । ये हैं-१. स्वस्तिकासन २. गोमुखासन ३. वीरासन ४. कूर्मासन ५. कुक्कुटासन ६. उत्तानकूर्मासन ७. धनुरासन ८. मत्स्येन्द्रासन ९. पश्चिमतानासन १०. मयूरासन ११. शवासन १२. सिद्धासन १३. पद्मासन १४. सिंहासन और १५. भद्रासन । इन आसनों में भी स्वात्माराम ने सिद्धासन तथा पद्मासन को विशेष महत्त्व देते हुए विस्तार से इनका वर्णन किया है । अन्त में हठाभ्यासियों के लिये अपथ्यकारक और पथ्यकारक आहार का विस्तार से विवेचन किया है ।

द्वितीय-उपदेशः -

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इस उपदेश को तीन भागों में बाँटा जा सकता है । पहले भाग (१-२०) में आसन और आहार की उपयोगिता पर जोर देते हुए गुरु के निर्देशन में ही प्राणायाम के अभ्यास की चर्चा की गई है । साथ ही प्राणायाम के अभ्यास के पूर्व 'नाड़ीशोधन' की आवश्यकता पर बल देते हुए प्राणायाम का सविधि वर्णन किया गया है । इस सन्दर्भ में उपयुक्त समय, अभ्यास की बारम्बारता, फलस्वरूप शरीर पर उनका प्रभाव तथा अभ्यासकाल में उपयुक्त-आहार आदि का निर्देश है । इसके अभ्यास में शीघ्रता या गलती करने से विभिन्न रोगों की सम्भावना हो सकती है और युक्तियुक्त रूप से अभ्यास करने से विभिन्न प्रकार के रोग दूर भी हो सकते हैं ।

दूसरे भाग (२१-३८) में स्थूलकायों और अधिक कफ-वालों के लिये 'षट्कर्म' की आवश्यकता इनके लाभों के साथ बताई गई है । इनके द्वारा कफ, मुटापा और मल आदि दूर हो जाने पर प्राणायाम में सफलता निस्सन्दिग्ध रहती है ।

हमारी जानकारी के अनुसार प्राणायाम का आठ भेदों में वर्गीकरण का प्रथम श्रेय श्रीस्वात्माराम को ही जाता है । अतः अन्तिम भाग (३९ से अन्त तक) में इनके आठों भेद - १. सूर्यभेदन २. उज्जायी ३. सीत्कारी ४. शीतली

५. भस्त्रिका ६. भ्रामरी ७. मूर्च्छा तथा ८. प्लाविनी का उनके लाभों के साथ सविधि वर्णन किया है । इसके बाद हठयोग तथा राजयोग को अन्योन्याश्रित बतलाते हुए अन्त में हठसिद्धि के लक्षण बताये गये हैं।

तृतीय-उपदेश: -

इस उपदेश में कुण्डली को योगतन्त्र का आधार बताते हुए इसके जागरण की आवश्यकता के प्रसंग में दश-मुद्राओं- १. महामुद्रा २. महाबन्ध ३. महावेध ४. खेचरी ५. उड्डीयान ६. मूलबन्ध ७. जालन्धर ८. विपरीतकरणी ९. वज्रोली और १०. शक्तिचालन- का वर्णन विधिपूर्वक तथा उनके लाभों के साथ विस्तार से किया गया है ।

चतुर्थ-उपदेश:-

आरम्भ में समाधि की परिभाषा, कुण्डलीजागरण तथा उसके परिणाम, लय की परिभाषा और उसके बाद शाम्भवी तथा खेचरी का वर्णन विधिवत् व विस्तार से मिलता है । तथा ये सभी समाधि के मार्ग के रूप में निरूपित किये गये हैं । इसके बाद नादानुसन्धान का वर्णन है, जिसे चार स्तरों- आरम्भावस्था, घटावस्था, परिचयावस्था और निष्पत्त्यवस्था-में विभक्त किया गया है । अन्त में विभिन्न प्रकार के नादों का वर्णन तथा नादश्रवण के परिणाम-स्वरुप समाधि की अवस्था का उल्लेख मिलता है।

पञ्चम-उपदेश: -

अभीतक प्रकाशित हठप्रदीपिका के संस्करणों में सर्वप्रथम कैवल्यधाम द्वारा प्रकाशित इस पञ्चम उपदेश में हठाभ्यास करते समय भूल से गलत-प्रक्रिया अपना लेने पर सम्भावित - व्याधियों के निवारणार्थ यौगिक-चिकित्सा का वर्णन किया गया है । इसी प्रसंग में शरीरस्थ वात, पित्त और कफ-स्थान का निरूपण तथा वायु के गलत-मार्ग पर चले जाने से गांठ बन जाने अथवा कफ की अधिकता के कारण-हृदयशूल, पार्श्वशूल, पृष्ठशूल, हिक्का, श्वास, शिर:शूल, कुष्ठ, तिमिर तथा कम्पन आदि रोगों की सम्भावनायें एवं उनकी उपचार-विधि बताई गई है। साथ ही आयुर्वेदिक-चिकित्सा का भी सहारा लेने को कहा गया है ।

HAṬHARATNĀVALĪ

(A Treatise on haṭhayoga)

of

ŚRĪNIVĀSAYOGĪ

Critically Edited

By

Dr. M. L. Gharote

Dr. Parimal Devnath

Dr. Vijay Kant Jha

2002

The Lonavla Yoga Institute (India)

Lonavla

About the author

śrīnivāsa, the author of *haṭharatnāvalī* has given some details about himself in the text. On the basis of this we learn that he was an erudite scholar well versed in the *vedas, vedānta, tantra, nyāya* and *yoga*. From his narration, it appears that he wrote commentaries on the works of *śaśadhara* and *maṇikānta miśra*. He also composed the work called *vedāntaparibhāṣā*.

He was the resident of the Tirabhukta region. His father was a great astrologer, probably named *saravara* as per the Nepali commentator and the name of his mother was *somāmbā*. He adores himself with the titles such as *kalitārkika-cuḍāmaṇī, sakala-nyāyaśāstra-saṃpradāya-pravartaka, nyāyācārya, sakala-haṭhayoga-pravartaka, jayalakṣmī* and *mahāyogīndra*.

From the frequent quotations of *haṭhapradīpikā*, it is clear that he received an inspiration to compose *haṭharatnāvalī* from *svātmārāma* although *śrīnivāsa* criticises him on some points.

Contents of the text

śrīnivāsa calls his treatise of *haṭhayoga* as *haṭharatnāvalī*. Alternatively he also calls his work as *haṭhayogaratnasaraṇī* or *ratnāvalī*. The contents are divided into four chapters. The distribution of various topics is as follows:

Chapter I

In this chapter after introducing himself, *śrīnivāsa* gives the purpose of his treatise HR. He gives various definitions of *yoga* and explains *mahāyoga* under which he describes *mantrayoga, layayoga, rājayoga* and *haṭhayoga*. He explains the relationship of *rājayoga* with *haṭhayoga* on the same lines as of HP. He gives elaborate description of eightfold

purificatory processes called *aṣṭakarmas* in place of usual *ṣaṭkarmas*, according to the tradition of his *guru*. He criticizes *svātmārāma* for not including *cakrikarma* under the purificatory processes. He gives a great importance to the practice of *cakrikarma* and recommends it to be practised during *jalabasti* instead of using a tube to be inserted in the rectum for which he also quotes the authority of *yogī carpaṭi*. He provides additional information on the *karmas* like *nauli*, *basti* and *kapālabhrānti* by giving different varieties. Under *nauli* he describes two types, namely, *bāhya nauli* and *antarā*. But the distinction between the two is not clear. *basti* is also described of two types—*jalabasti* and *vāyubasti* for which the use of *cakrikarma* is recommended. In *kapālabhāti* a variety is given wherein the head is moved towards left and right while exhaling rapidly. In the practice of *gajakaraṇī*, instead of plain water, jaggery water or coconut water is recommended.

The purpose of these *karmas* is not only to remove the excess of fat and mucus but to purify six *cakras*, to provide basis for *prāṇāyāma*, to remove all kinds of disorders and to contribute to the healthy body which is an instrument on the path of liberation. It is also described how different *karmas* purify specific *cakras*.

The other topics dealt with in this chapter are description of a hut for *yoga* practice, *mitāhāra*, recommended and prohibited food items, helpful and harmful things in attaining the success in *yoga* and ultimately the list of great *siddhas* who attained success through *haṭhayoga* and conquered death.

Chapter II

This chapter elaborately describes nine *kumbhakas* and ten *mudrās*. Alongwith the eight well-known *kumbhakas*,

one more *kumbhaka* is described under the name of *bhujangīkaraṇa*. *uḍḍiyāna* is called *bāhyoḍḍyāna*. *vajroli* and *khecarī mudrās* have been dealt with in great detail. The synonyms of *iḍā*, *piṅgalā* and *suṣumnā* given here are not usually found in other *haṭha* texts.

Chapter III

This is mainly devoted to the elaborate description of 84 *āsanas*. The author starts with the topic of *aṣṭāṅgayoga*, but describes only *mānasa niyamas* and *kāyika niyamas*. No explanation of these is given.

āsana being the first component of *haṭhayoga* the author deals with this topic elaborately. He gives the list of 84 *āsanas*, but explains the techniques of only 36 *āsanas*. He mentions in the list four types of *padmāsana*, six types of *mayūrāsana*, three types of *kūrmāsana*, and five types of *kukkuṭāsana*. After dealing with the topic of *āsanas*, he discusses the importance, technique and the effects of *prāṇāyāma*.

Chapter IV

It deals with *samādhi* and the techniques like *nādānusandhāna*, four states of progress in *yoga*, such as *ārambha*, *ghaṭa*, *paricaya* and the *niṣpatti* and the experiences during each of these states.

There is a discussion of *piṇḍa* and *brahmāṇḍa* in which elaborate description of 14 *nāḍīs* is given as well as philosophical statements from different sources like *sūtasaṃ hitā*, *viṣṇupurāṇa*, *bhagavadgītā* and different schools of philosophy such as *nyāya*, *prābhākara*, *sāṃkhya*, *advaita* have been briefly mentioned. This chapter seems to be hurriedly and abruptly ended.

हठतत्वकौमुदी

Haṭhatatvakaumudī

A treatise on
Haṭhayoga
by
Sundaradeva

Editor-in-chief
Dr. M. L. Gharote
Editors
Dr. Parimal Devnath
Dr. Vijay Kant Jha

2007
The Lonavla Yoga Institute (India)
Lonavla--410401

Contents

Contents

***

There are other quotations names and sources of which are not mentioned. They are indicated by such terms as '*taduktam*', '*uktaṃ ca*', '*granthāntare*', '*kecit tu*'.

All these references confirm that *sundaradeva* had studied extensive *yoga* literature for writing his treatise.

Contents of the text

sundaradeva calls his treatise of *haṭhayoga* as *haṭhatatvakaumudī* which means 'Light on the Principles of *haṭhayoga*'. The contents of the text are divided into 57 chapters for which he uses the term '*udyota*'. The distribution of various topics is as follows:

Chapter I:

According to the Indian tradition, in this introductory chapter, the author starts his treatise with the salutation to Lord *gaṇeśa* and *ādinātha īśa*. Recognising the importance of *prāṇa* in the practice of *haṭhayoga*, the author also offers his salutation to *prāṇa*. The purpose of the treatise, according to the author, is to help the ordinary aspirants to practice *haṭhayoga* without any delusion. Therefore he has composed this treatise based on the essential principles of *yoga* drawn from various sources. He emphasises on the fact that the knowledge of '*saṅketa*' in the traditional texts is essential for the success in *haṭhayoga*, which is possible only through the grace of a *guru*. Mere knowledge of the texts is not enough. He mentions about the fortified and unfortified bodies and emphasises on the need of fortifying the body by a *yogī* through the fire of *yogic* practices. This is not possible without the control of *prāṇa* which pervades all the parts of the body.

Chapter II:

For the success in *yoga*, the knowledge of *āsana*,

kumbhaka, *mudrā* etc. through the mouth of the *guru* and their practice is essential. Then only there can be the entry of *prāṇā* into *suṣumnā* and attaining the void state of the mind possible. For this union of *prāna* and mind is necessary. They are interdependent. Mind controls all the sense organs and mind is governed by *prāna*.

This chapter also mentions the characteristics of the *guru* and *śiṣya* meaning the teacher and the taught.

Liking solitude, indifference towards sensual objects, devoid of lethargy, courage, firm determination, inquisitiveness about the Ultimate Reality, follower of the *vratas*, firm faith on *guru* like God, control of the senses, consuming moderate diet, are the characteristics of a good disciple.

He is considered as real *guru* whose gaze is fixed without the help of any object, whose *vāyu* becomes stable without any effort and whose mind becomes steady without the object of concentration.

To be continuously engaged in *yogic* practices and to behave according to the guidance of the *guru* is the source of success in *yoga*.

Chapter III:

While explaining the importance of various *yogic* practices, selection of appropriate season and region or place has been emphasised. Any disregard to these factors can result in various complaints like loss of memory, dumbness, blindness, fever, loss of hearing, respiratory troubles etc. In order to overcome such problems as a result of faulty practices, some remedies have also been described.

Chapter IV:

This chapter deals with the importance of moderate diet during *yogic* practices. Consumption of excess food, or undesirable items in the food or fasting and their ill-effects have been elaborately discussed.

Chapter V:

According to the propensities of the individual aspirants they are classified as *mandādhikārī* (lower category), *adhimātra* (moderate) and *uttara* (superior). Their characteristics and period required for the success in *yoga* have also been mentioned. A daily routine and precautions have been described for the *sādhaka*.

Chapter VI:

This chapter relates to the discussion of *yamas* and *niyamas*. Ten kinds of *yamas* and *niyamas* according to *yājñavalkya* have been discussed. *ahimsā* has been treated as *mahāvrata*.

Chapter VII:

This chapter deals with the topic of *āsanas*. After mentioning suitable place, importance and effects various *āsanas* have been described with their utility in different disorders. For example, *dhanurāsana* and *kukkuṭāsana* for *nāḍīśuddhi* or purification of the *nāḍīs*, *matsyendrapīṭha* for pain and fever, *mayūrāsana* for pain, fever, indigestion and removal of toxins, *śavāsana* for mental rest, *siṃhāsana* in the disorders of *vāta* humour, *bhadrāsana* in the disorders of *kapha* and *vāta* humours, *vīrāsana* for the stability of the mind, *kūrmāsana* for eighty types of disorders of *vāta* humour, *prasāritāsana* for the attainment of *rājayoga* state, *padmāsana* for *prāṇāyāma*, *baddhapadmāsana* in the disorders of *vāta* and *kapha* humours and in fever. *yonyāsana* or *siddhāsana* for

the control of *apāna*. *paścimatāna āsana* for the control of *vāyu*, improving digestion and removing flatulence. *svastikāsana* for the peace of mind. *padmāsana* and *siddhāsana* have been greatly eulogised from the point of *yoga*. Along with the practice of *āsanas*, practice of *prāṇāyāma*, *mudrā*, *dhāraṇā* are also recommended.

Chapter VIII:

It describes eight purificatory processes which include *dhauti*, *cakrī*, *basti*, *neti*, *gajakaraṇī*, *trāṭaka* and two forms of *nauli* as *āntar nauli* and *bāhya nauli*.

Chapter IX:

Before the practice of *prāṇāyāma* some special practices are recommended which include *meru-cālana*, *cakrībandha*, *tānābhyāsa* and *cāraṇā*. *cāraṇā* has been described of ten types. This is a new information for the readers.

Chapter X:

This chapter deals with *kumbhaka* and its varieties. After discussing the importance and effects of *kumbhaka* eight known varieties like *sūryabhedana*, *ujjāyī* etc. have been described. Apart from these some unknown varieties have also been described. These are—*utkarṣa kumbhaka*, *apakarṣa*, *sahaja kumbhaka*, *cakra kumbhaka*, *gadā kumbhaka*, *nāḍīviśuddhi kumbhaka*, *bhūtaśuddhi kumbhaka*, *śṛṅkhalā kumbhaka*, *jīvacāla kumbhaka*, *merucāla kumbhaka* and *ghaṭibandha kumbhaka*.

Chapter XI:

Importance of practice in *yoga* has been described here. Whether it is the cure of diseases, or purification of the *nāḍīs*, or leading *prāṇa* into the *suṣumnā* or attaining the state of *unmanī*, one cannot get success without practice. As the

practice increases and maturity develops, an individual progresses towards the attainment of desired goal.

Chapter XII:

Before one progresses further in his *sādhanā* it is necessary to remove the physical distress. Varieties of practices of *vāyusādhana* have been described. These practices include sucking of the air through the mouth making it like a beak of the crow, sucking the air through the crevices of the teeth, *prāṇadhāraṇā* at the toes, navel and nose, etc.

Chapter XIII:

Utility of *haṭhayogic* practices, especially that of *mudrās* has been explained.

Chapter XIV:

After defining the word '*mudrā*' ten *mudrās* have been enumerated. However, only two *mudrās*, namely, *viparītakaraṇī* and *khecarī* have been mentioned. The process of *lambikākaraṇā* has been specially described.

Chapter XV:

In this chapter three *bandhas*, namely, *mūlabandha*, *uḍḍiyānabandha* and *jalandharabandha* and three *mudrās*, namely, *mahāmudra*, *mahabandha* and *mahāvedha* have been elaborately described.

Chapter XVI:

It deals with the topic of *bindu*. For the control of *bindu vajroli* and its two types *sahajoli* and *amaroli* have been recommended.

Chapter XVII:

Control of *bindu* has been greatly eulogised. It gives physical beauty, strength etc. There is a correspondence

between *nāda*, *bindu* and *manas* and control of one brings control of the other.

Chapter XVIII:

In this chapter again there is a description of *khecarī* and for the success of *khecarī* the *khecari mantra* has been prescribed. Repetition of this *mantra* five hundred thousand times is said to bring *siddhi*. To attain success through *mantra* there is also a description of the repetition of *bījamantras*, especially *vākbīja* at *mūlādhāra*, *kāmabīja* at *hṛdaya* and *śaktibīja* at the *ājñācakra*. Eighteen hundred thousand repetition of these *bījamantras* are said to bestow all the supernormal attainments.

Chapter XIX:

Man becomes miserable due to his ignorance, his *karmas* and attachment with worldly objects. When he develops detachment or *vairāgya* and the knowledge dawns upon him, he becomes liberated.

Chapter XX:

Man receives the perishable body depending upon the impressions of his past *karmas*. In this body the *mantra haṃ* and *saḥ* is continuously repeated in the form of inhalations and exhalations. In the eight petalled lotus of the heart the *jīva* is constantly moving 21600 times in the form of inhalations and exhalations. This kind of repetition of *mantra* is called *ajapā*. This body is in the form of *haṃsa* and *prāṇā* and *apāna* are its two wings.

Chapter XXI:

In order to keep the body fit and free from diseases two *kalpa* treatments have been referred to which are *muṇḍi kalpa* and *vārāhi kalpa*. It is also described how the *jīva* moves in the *dvādaśāra cakra* and how and why this body in the

form of abode of *brahman* perishes.

Chapter XXII:

This chapter describes how the ten vital airs as *prāṇa*, *apāna* etc. conduct different functions in the body including the absorption of *vāyu*, distribution of the nourishment through food-intake.

Chapter XXIII:

Elaborate description is given of the fourteen main channels (*nāḍīs*) their location and functions, especially the location and working of *iḍā*, *piṅgalā* and *suṣumnā*.

Chapter XXIV:

In this chapter is given the description of 16 *ādhāras* in two forms. One form includes six *cakras* like *mūlādhāra* etc. and the ten *nāḍīs* which maintain efficient working of the body. The other from includes *netrādhāra*, *vyomādhāra*, *nāsikā* (nose), *jihvā* (tongue) which are commonly known among the *yogis*. Knowledge of these *ādhāras* is essential for the *yogis*.

Chapter XXV:

From this chapter onwards starts the discussion of *cakras*. Piercing of *cakras* leads to the state of *laya* (absorption). This chapter deals with the description of *mūlādhāra* with its location, colour, *bījākṣaras*, deity etc. Similarly, there is a description of *kanda*, *yoni* and *suṣumnā*.

Chapter XXVI:

Here description of *svādhiṣṭhāna cakra* with its petals, colour, *akṣara*, deity etc. is given.

Chapter XXVII to XXXI:

These chapters describe the *cakras* like *maṇipūra*,

viśuddha, *ājñā* and *sahasrāra* along with the significance of *ājñā* and *sahasradala*.

Chapter XXXII:

Referring to the other texts the *ṣaṭcakras* are called *jyotisthāna*, *nābhimūla* (root of the navel) as *bindusthāna* which is the source of the production of *nāda*.

Chapter XXXIII:

For the attainment of *abhyudaya* and *niḥśreyas* elaborate description and discussion of *yonimudrā* is given in this chapter. *bindu*, *nāda* and *śakti* have been considered as the three *mātrās* of *prāṇā* itself.

Chapter XXXIV:

It describes the importance of *nāḍīśuddhi* in *yoga* which is attained through the practice of *aṣṭakarmas*. Purification of *nāḍis* is essential for the success in *prāṇāyāma*, control of mental activities and *bindujaya*.

Chapter XXXV:

In this chapter is described the importance of preliminaries before the *nāḍīśuddhi*. In this is suggested the use of *vallijacūrṇā* mixed with ghee to be kept in the mouth before the practice of *prāṇāyāma*. Similarly, it is suggested to start *nāḍīśodhana* on an auspicious day after remembering one's tutelary deity like *gaṇeśa* etc.

Chapter XXXVI:

There is an elaborate discussion on the topic of *nāḍīśuddhi*. Before the practice of *nāḍīśuddhi prāṇāyāma* importance of *mitāhāra* (moderate diet) and its influence has been discussed in the light of varied opinions on it.

Chapter XXXVII:

From this chapter onwards a discussion on *prāṇāyāma* begins. The measure of the body is stated to be 96 *aṅgulas* (digits) and the measure of *prāṇa* is 12 *aṅgulas* (digits) more. One who reduces the measure of *prāṇā* to the minimum is considered a real *yogī*. *prāṇā* should be held through *candranāḍī* after performing *nāḍīśuddhi*.

Chapter XXXVIII:

This chapter gives the definition of *prāṇāyāma*, describes the three phases of *pūraka*, *kuṃbhaka*, *recaka*, examining the length and subtleness of *prāṇāyāma*, selection of suitable *āsana*, effects of *prāṇāyāma* on sense organs and mind, technique of increasing the duration of *kuṃbhaka*, effects of *sagarbha* and *agarbha* types of *prāṇāyāma*, control of *prāṇa* and *apāna*, characteristics of *bahiṣṭha kuṃbhaka*, *udghāta lakṣaṇa*, measures of *prāṇāyāma* and elevation of *prāṇāyāma* on the basis of *kāla* and *saṃkhyā*.

Chapter XXXIX:

Out of the four stages in *yoga* the first stage called *ārambhāvasthā* has been discussed here. *prāṇāyāma* is one of the means of attainment of this stage. In this *meru kumbhaka* has been given great importance. This *kumbhaka* in the longer run culminates in *nisarga kumbhaka*. The importance, characteristics, results of this has been elaborately discussed along with the technique of piercing of *ādhāracakra*, *pīṭhotthāna*, *agnijaya* etc.

Chapter XL:

There is a description of the techniques of controlling ten *vāyus* such as *prāṇa*, *apāna*, *nāga*, *kūrma* etc. Different practices like *pratyāhāra*, *dhāraṇā*, *dhyāna* etc. are discussed on the basis of their duration. Thus the importance of *kāla* in the attainment of *siddhis* in *haṭhayoga* is explained.

Chapter XLI:

This chapter describes stages of *pratyāhāra* and *ghaṭāvasthā*. There is a mention of *marmas* or vital points in the body and their relationship with the removal of certain disorders by practising *pratyāhāra* on those vital points. Thus here we find the description of *pratyāhāra* according to *yājñavalkya* and *sūtasaṃhitā*.

Chapter XLII:

It describes the state of *paricayāvasthā* in which the *prāṇā* enters the *suṣumnā* and travels up. To reach this state, the intensity of *nisarga kumbhaka* required is mentioned.

Chapter XLIII:

There is a discussion about the effects of the process of *śakticālana*. Through the long practice of *prāṇāyāma*, *kuṇḍalinī* is aroused and it ascends to the *sahasrāra* after piercing the three knots, as a result of which one attains the success in the stability of *bindu*, stability of mental activities and in *vajrolī* etc.

Chapter XLIV:

The process of *śakticālana* is elaborately described. Arousal of *kuṇḍalinī* through *prāṇāyāma*, the process of *sarasvatī cālana*, piercing of the *cakras* and *granthis* (knots) are the topics discussed with their results.

Chapter XLV:

utkarṣa prṇāyāma forms an integral part of *śakticālana*. An elaborate narratioon of utkarṣa *prṇāyāma* has been provided in this chapter.

Chapter XLVI:

It deals with the state of *niṣpatti*, mainly related to *dhāraṇā*. An attempt has been made to co-ordinate the concept

and practice of *dhāraṇā* as explained in the PYS and in *haṭha* texts. On the basis of duration of *dhāraṇā* leading to proficiency in it and following the results a co-ordination is attempted with the results of *saṃyama*. Therefore, this chapter is named as *saṃyamasiddhikāla vivecana*.

Chapter XLII:

In the light of the supernatural powers resulting from the process of *saṃyama* as described in the PYS different kinds of *dhāraṇā* of *haṭhayoga* are described in this chapter. It is indicated that different *dhāraṇās* of *haṭhayoga* on five elements lead to the attainment of *vivekakhyāti*. In an attempt of co-ordination with the PYS the terms of PYS like *madhumati, upasarga, kleśabīja, viśoka* etc. have been profusely used.

Chapter XLVIII:

This chapter also discusses the attainment of supernatural powers through *dhāraṇā* in which seven and ten types have been mentioned. Thus by the practice of *dhāraṇā* how various disorders are removed and how one attains the feeling of well-being has been described.

Chapter XLIX:

This chapter elaborately discusses the topic of *dhyāna* in the light of description of PYS. Views of other authorities like *purāṇas* etc. on *dhyāna* have been synthesised. Different topics related with *dhyāna* such as definition, characteristics, *saguṇa-nirguṇā dhyāna*, duration of *dhyāna*, *sūkṣma-sthūla dhyāna*, *sabīja-nirbīja dhyāna*, *ḍhyāna* on the various *cakras* according to *haṭhayoga*, *nirguṇā dhyāna* in *śāṃbhavī-mudrā*, *saguṇa dhyāna-mudrā*, *dhyāna* ultimately leading to the state of *saṃprajñāta* and *asaṃprajñāta* or void state etc. are elaborately discussed.

Chapter L:

This chapter is also related to the description of *dhyāna* in which elaborate techniques and experiences of *saguṇa* and *nirguṇā dhyāna* are discussed. To attain *agarbha-dhyāna* from *sagarbha-dhyāna* and from *sabīja-dhyāna* to *nirbīja-dhyāna* the mind has to be stabilised which is done by *dhyāna* of *īśvara* with loving devotion. It is a superior technique along with *viveka, vairāgya, abhyāsa* and control of *prāṇa*. There is an elaborate description of *bhrūmadhya-dhyāna, nāsāgra-dhyāna, jyotir-dhyāna, ātma-dhyāna, śiva-dhyāna* etc. Similarly, *sadhūma* and *nirdhūma dhyāna* in the *nirguṇā* type has been presented along with its experiences in a lucid manner.

Chapter LI:

It describes characteristics of *samādhi* and its varieties of *saṃprajñāta, asaṃprajñāta, sabīja* and *nirbīja*. The process of going to *samādhi* from *dhyāna* has been described in terms of duration the state is held. In this context a co-ordination has been attempted with *unmanī* state, union of *kuṇḍalinī* in the *sahasrāra*, balanced state of *guṇas, vyuthāna* state and *saṃ skāranirodha* as mentioned in the PYS.

Chapter LII:

Description of *apakarṣa prāṇāyāma* is found here in which there is a discussion about how the *prāṇa* is ascended to *sahasrāra* through *suṣumnā* channel while piercing different *cakras* and descended downwards. There is also a description of the technique of absorbing *prāṇā* into the three units of OM, namely, A, U and M.

Chapter LIII:

Technique of *utkrānti prāṇāyāma* is given here. When a *yogī* wishes to leave his mortal coil at will he uses this type of *prāṇāyāma*. He withdraws all his sense organs into the

mind and with the combination of *prāṇā* leads through all the *cakras* to the *sahasrāra* where with the union of *parama śiva* and contemplating on *praṇava* leaves his *prāṇa* through *brahmarandhra*. Similarly, when the *yogī* becomes aware that his death is approaching and if he does not want to leave his body, resorts to the same technique and holds the *prāṇa* in *sahasrāra* until the time of death passes off. Thus he can voluntarily avoid the time of death.

Chapter LIV:

This chapter on *nādānusandhāna* discusses the technique of listening to the *anāhatanāda* and absorption of the mind into it. In the context of *nāda* the four stages of *ārambha*, *ghaṭa*, *paricaya* and *niṣpatti* have been described. There is a description of the experiences of different kinds of *nāda* resulting from the piercing of every knot. In this connection, the four stages of *nāda*, namely, *parā*, *paśyantī*, *madhyamā* and *vaikharī* and their conditions have been described.

Chapter LV:

In this chapter on *rājayoga* how the various practices of *haṭhayoga* lead to the attainment of the state of *rājayoga* has been described. The topics such as the conditions of a *rājayogī*, transformation of *haṃsa mantra* into *sohaṃ mantra*, union of *prāṇa* and *apāna*, are discussed at length.

Chapter LVI:

How to know the time of approaching of death has been explained with the help of the quotations from different *purāṇas*. The life-span has been decided on the basis of flow of breath through the nostrils. In this connection *chāyā-puruṣa lakṣaṇa* and other indications of death have been described.

With this the text ends.

Chapter L:

This chapter is also related to the description of *dhyāna* in which elaborate techniques and experiences of *saguṇa* and *nirguṇā dhyāna* are discussed. To attain *agarbha-dhyāna* from *sagarbha-dhyāna* and from *sabīja-dhyāna* to *nirbīja-dhyāna* the mind has to be stabilised which is done by *dhyāna* of *īśvara* with loving devotion. It is a superior technique along with *viveka, vairāgya, abhyāsa* and control of *prāṇa*. There is an elaborate description of *bhrūmadhya-dhyāna, nāsāgra-dhyāna, jyotir-dhyāna, ātma-dhyāna, śiva-dhyāna* etc. Similarly, *sadhūma* and *nirdhūma dhyāna* in the *nirguṇā* type has been presented along with its experiences in a lucid manner.

Chapter LI:

It describes characteristics of *samādhi* and its varieties of *saṃprajñāta, asaṃprajñāta, sabīja* and *nirbīja*. The process of going to *samādhi* from *dhyāna* has been described in terms of duration the state is held. In this context a co-ordination has been attempted with *unmanī* state, union of *kuṇḍalinī* in the *sahasrāra*, balanced state of *guṇas, vyuthāna* state and *saṃ skāranirodha* as mentioned in the PYS.

Chapter LII:

Description of *apakarṣa prāṇāyāma* is found here in which there is a discussion about how the *prāṇa* is ascended to *sahasrāra* through *suṣumnā* channel while piercing different *cakras* and descended downwards. There is also a description of the technique of absorbing *prāṇā* into the three units of OM, namely, A, U and M.

Chapter LIII:

Technique of *utkrānti prāṇāyāma* is given here. When a *yogī* wishes to leave his mortal coil at will he uses this type of *prāṇāyāma*. He withdraws all his sense organs into the

mind and with the combination of *prāṇā* leads through all the *cakras* to the *sahasrāra* where with the union of *parama śiva* and contemplating on *praṇava* leaves his *prāṇa* through *brahmarandhra*. Similarly, when the *yogī* becomes aware that his death is approaching and if he does not want to leave his body, resorts to the same technique and holds the *prāṇa* in *sahasrāra* until the time of death passes off. Thus he can voluntarily avoid the time of death.

Chapter LIV:

This chapter on *nādānusandhāna* discusses the technique of listening to the *anāhatanāda* and absorption of the mind into it. In the context of *nāda* the four stages of *ārambha*, *ghaṭa*, *paricaya* and *niṣpatti* have been described. There is a description of the experiences of different kinds of *nāda* resulting from the piercing of every knot. In this connection, the four stages of *nāda*, namely, *parā*, *paśyantī*, *madhyamā* and *vaikharī* and their conditions have been described.

Chapter LV:

In this chapter on *rājayoga* how the various practices of *haṭhayoga* lead to the attainment of the state of *rājayoga* has been described. The topics such as the conditions of a *rājayogī*, transformation of *haṃsa mantra* into *sohaṃ mantra*, union of *prāṇa* and *apāna*, are discussed at length.

Chapter LVI:

How to know the time of approaching of death has been explained with the help of the quotations from different *purāṇas*. The life-span has been decided on the basis of flow of breath through the nostrils. In this connection *chāyā-puruṣa lakṣaṇa* and other indications of death have been described.

With this the text ends.

इन्द्रजालविद्यासंग्रहः ।

तत्र

[इन्द्रजालशास्त्रम् + कामरत्नम् + दत्तात्रेयतन्त्रम् + षट्कर्म्म-

दीपिका + सिद्धनागार्जुनकक्षपुटम् ।]

पण्डितकुलपति बि, ए, उपाधिधारि-

श्रीमज्जीवानन्दविद्यासागरभट्टाचार्य्यात्मजाभ्यां

पण्डित-श्रीआशुबोध-विद्याभूषण-पण्डित-श्रीनित्यबोध-

विद्यारत्नाभ्यां प्रतिसंस्कृतः प्रकाशितश्च ।

तृतीयसंस्करणम् ।

कलिकातामहानगर्य्याम्

वाचस्पत्ययन्त्रे

मुद्रितः ।

इं १९१५ ।

इन्द्रजालविद्यासंग्रहनिघण्टुः ।

इन्द्रजालस्य ।

कामरत्नस्य ।

विषयाः ।	पृष्ठाङ्काः ।

विषयाः ।	पृष्ठाङ्काः ।

दत्तात्रेयतन्त्रस्य ।

सिद्धनागार्जुनकक्षपुटम् ।

श्रीमदीशानशिवगुरुदेव मिश्र प्रणीता

ईशानशिवगुरुदेवपद्धतिः

प्रथम भाग

महामहोपाध्यायेन

त. गणपति शास्त्रिणा

भूमिका लेखक :

डा॰ एन॰ पी॰ उण्णी

अध्यक्ष, संस्कृत विभागः

केरल विश्वविद्यालयः

भारतीय विद्या प्रकाशन

दिल्ली (भारत) वाराणसी

विषयानुक्रमणिका।

अनन्तशयनसंस्कृतग्रन्थावलिः ।

ग्रन्थाङ्कः ७२.

ईशानशिवगुरुदेवपद्धतिः

श्रीमदीशानशिवगुरुदेवमिश्रविरचिता

संस्कृतग्रन्थप्रकाशनकार्याध्यक्षेण

महामहोपाध्यायेन

त. गणपतिशास्त्रिणा

संशोधिता ।

द्वितीयो मन्त्रपादः ।

सा च

अनन्तशयने

महामहिमश्रीमूलकरामवर्मकुलशेखरमहाराजशासनेन

राजकीयमुद्रणयन्त्रालये तदध्यक्षेण

मुद्रयित्वा प्रकाशिता ।

विषयानुक्रमणी ।

श्रीमदीशानशिवगुरुदेव मिश्र प्रणीता

ईशानशिवगुरुदेवपद्धतिः

तृतीय भाग

महामहोपाध्यायेन

त. गणपति शास्त्रिणा

भूमिका लेखक :

डा० एन० पी० उण्णी

अध्यक्ष, संस्कृत विभागः

केरल विश्वविद्यालयः

भारतीय विद्या प्रकाशन

दिल्ली (भारत) वाराणसी

विषयानुक्रमणी ।

श्रीमदीशानशिवगुरुदेव मिश्र प्रणीता

ईशानशिवगुरुदेवपद्धतिः

चतुर्थः भाग

महामहोपाध्यायेन

त. गणपति शास्त्रिणा

भूमिका लेखक :

डा॰ एन॰ पी॰ उण्णी
अध्यक्ष, संस्कृत विभागः
केरल विश्वविद्यालयः

भारतीय विद्या प्रकाशन
दिल्ली (भारत) वाराणसी

विषयानुक्रमणी।

योगपादः ।